सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई–283202 (आगरा) उ.

वर्ष : 56 : अंक : 09

दिसम्बर 2023

प्रकाशन तिथि : 01.12.2023

अमृत-कण

आ यद्वामीय चक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।।

(ऋग्वेद)

हे परस्पर स्नेहभाव और विरोध रहित स्त्री-पुरुषो ! दीर्घ दृष्टि से युक्त बनो ! हम विद्वान लोग, आप और अन्य सब लोग मिलकर स्वराज्य की रक्षा के लिए सब प्रकार से प्रयत्नशील रहें।

◆ ◆ ◆

काव्यशास्त्रविनोदेन कालोगच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

(हितोपदेश)

बुद्धिमानों का समय काव्य, शास्त्र, साहित्य का अध्ययन कर मनोरंजन में व्यतीत होता है, परन्तु मूर्ख यानि बुद्धिहीन लोगों का समय बुरी आदतों में, सोने में और कलह करने में व्यतीत होता है।

◆ ◆ ◆

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वत्र और प्रत्येक जीव में समान रूप से मौजूद देखता है, वह अपने मन के द्वारा अपने आपको भ्रष्ट नहीं करता। इस प्रकार वह दिव्य गन्तव्य को प्राप्त कर लेता है।

◆ ◆ ◆

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

(चाणक्य नीति)

घर के बाहर निकले हुए को सच्ची मित्र विद्या होती है, घर के अन्दर शीयुक्त पत्नी मित्र होती है, रोगी के लिए औषधि मित्र होती है और मरने वाले का मित्र उसका धर्म (धर्माचरण) होता है। इसलिए धर्म का पालन अधिक से अधिक करना चाहिए।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :–शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 दिसम्बर 2023 अंक : 09

**सच्चिदानन्दरूपाय व्यापिने परमात्मने
नमः श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने**

अविद्या ग्रंथि का भेदन करने वाले सच्चिदानन्द रूप व्यापी श्री गुरुनाथ को नमस्कार है।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	03
2.	सम्पादकीय	09
3.	श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	15
4.	खीर चोरा (गोपीनाथ) मन्दिर- अन्तूराम यादव	19
5.	लीला धारी की लीलाऐं- जगदीश राए बंसल	23
6.	ब्राह्मण द्वारा प्रेत उद्धार- कृष्ण कुमार पाण्डेय	29
7.	पुरुष और प्रकृति : योग की दृष्टि में- श्री सुरेन्द्रबहादुर सिंह	33
8.	गीता में जीवन-दर्शन- श्री ऋषिराम शर्मा	38

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1500.00

विशेष लेख

मन की एकाग्रता के दो शास्त्रोक्त साधन

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मन की एकाग्रता ही मनुष्य के इहलौकिक और पारलौकिक जीवन को सुखद और श्रेयस्कर बनाने का मुख्य आधार होती है अतः प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि वह अपने मन को एकाग्रता की शक्ति से सम्पन्न कर ले। मन की एकाग्रता के बिना दृढ़ संकल्प शक्ति का प्रादुर्भाव भी होना असम्भव ही रहता है। जो अपनी संकल्प शक्ति में दृढ़ता लाकर असम्भव को भी सम्भव बना लेने की इच्छा रखते हैं उन्हें मन को एकाग्रता की आधार-भूमि पर ला खड़ा करने का सर्वप्रथम उपाय कार्यरूप में लाना चाहिए। समाधि-लाभ का आधार मन की एकाग्रता ही होती है। मन को एकाग्र किये बिना इससे तरंगित होने वाली अनगिनती वृत्तियों का नियमन अथवा निरोध हो ही नहीं सकता है। इसलिए योग-दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोध' सूत्र को ही प्राथमिकता प्रदान करते हुए अपने समाधि पाद का शुभारम्भ यहीं से किया है। उन्होंने इसी पाद में आगे स्पष्ट किया है कि यदि तुम चित्तवृत्ति निरोध की साधना में सफल हो गये तो निश्चय ही अपने स्वाभाविक आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाओगे। तीसरे सूत्र में उन्होंने-

'तदाद्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्।'

की ओर योग-साधकों का ध्यान खींचते हुये स्पष्ट किया है कि चित्तवृत्तियों के निरोध के प्रयास की सफलता तुम्हें आत्म स्वरूप में स्थित कराकर आत्मानन्द की उपलब्धि करा देगी, जो मानव जीवन का चरम लक्ष्य होता है।

पर कैसे प्राप्त हो मन की यह एकाग्रता या चित्तवृत्तियों के निरोध की यह अवस्था ? अर्जुन को मन की एकाग्रता अथवा गीता की भाषा में स्थित-प्रज्ञता को वरण करने का उपदेश जगदात्मा भगवान कृष्णचन्द्र ने जब दिया तब उसने भी तो बिना किसी हिचक के यही प्रश्न उनसे पूछ लिया था-

चंचलं हि मनः कृष्ण
प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम्।।

मित्र! बात तो तुम्हारी ठीक है लेकिन यह तो बताओ कृपानिधान ! इस वायु के समान अति चंचल वश में न आने वाले बलशाली मन को वश में कैसे किया जाये ? यह तो बड़ा ही दुःसाहस का कार्य है ! भगवान ने अर्जुन की बात का समर्थन करते हुए कहा–ठीक ही कहते हो तुम महाबाहो–

असंशयं महाबाहो
मनो दुर्निग्रहं चलं।।

कौन्तेय ! विलाशक तुम्हारा कहना तो ठीक ही है। मन निश्चय ही अतिशय, चंचल और दुर्निग्रही है। इसे पकड़कर ठहरा पाना वश में ले आना दुष्कर तो जरूर है। लेकिन सुनो अर्जुन–

अभ्यासेन तु कौन्तेय।
वैराग्येण च गृह्यते।।

अभ्यास और वैराग्य–यह दो ऐसे साधन हैं जिन्हें अपना लेने पर यह एकदम न सही तो धीरे–धीरे क्रमशः यह चंचल होते हुए भी मनुष्य के वश में आ जाया करता है। यह दोनों ही साधन शास्त्रोक्त हैं, ऋषियों और मुनियों द्वारा परीक्षित हैं। योगियों का अपना अनुभव रहा है कि जिनका मन वश में नहीं हो पाता, अभ्यास और वैराग्य के अमोघ साधन न अपनाकर जो असंयतात्मना बने रहते हैं योगरत्न की उपलब्धि उनके लिये दुष्प्राप्य ही बनी रहती है।

योग–दर्शन में भगवान पतंजलि ने भी मन को एकाग्र बनाने के लिये इन्हीं दो साधनों को अपनाने का परामर्श दिया है। उनका आदेश है–

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

1/12

अर्थात् मन को वश में करने का उपाय अभ्यास और वैराग्य ही है, निश्चय ही अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन तथा उसकी पंचधा वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

अभ्यास कहते हैं किसी भी यत्न अथवा क्रिया को पुनः–पुनः करने को। अगले सूत्र में भगवान पतंजलि ने स्पष्ट किया है–

तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।

श्रीमद् भगवत्गीता में भी इसी अभ्यास को इस प्रकार निरूपित किया है–

शनैशनै रूपर मेद्,
बुद्धया धृति गृहीतया।
आत्म संस्थ मनः कृत्वा,
न किंचिदपि चिन्तयेत।।

साधना के अभ्यास में विवेक का मिश्रण रहता है। विवेक के द्वारा ही अनात्म विषयों से आत्मा को भिन्न जानकर ही अनात्म विषयों और वस्तुओं के प्रति वैराग्य का उदय होता है। विवेक और वैराग्य दोनों का जोड़ा है और इनके पीछे ही शमादि सम्पत्ति की सिद्धि होती है। इसीलिए यत्नपूर्वक अभ्यास में निरन्तर रत रहने का आदेश और परामर्श योग साधकों को दिया गया है। वैराग्य–भावना को दृढ़भूमि पर ला खड़ा करने के लिये सत्कार पूर्वक यानी श्रद्धा के साथ–दीर्घकालीन अभ्यास ही चित्त–वशीकार का एक मात्र उपाय है। जब मन दृढ़भूमि पर आ खड़े होने का अभ्यस्त हो जायेगा तो फिर शिवसंकल्पों की धारा में सहजतया बह जाने के सिवाय उसको उल्टी दिशा में यानी जगत् के दुःख–जंजालों की ओर जाने में कोई रुचि ही नहीं रहेगी।

भगवान व्यास देव ने योगदर्शन के सूत्र "अभ्यास वैराग्यभ्यां तन्निरोधः" के आशय को एक सुन्दर उपयोगी उदाहरण द्वारा हृदयंगम् कराने का उत्तम प्रयास किया है। वे लिखते हैं–

चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भारा विवेक विषय निम्ना सा कल्याणवहा। संसार प्राग्भारऽविवेक विषयनिम्ना पापवहा। तत्रा वैराग्येण विषय स्त्रोतः खिली–क्रियते। विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेक–स्तोत्र उद्घाट्यते। इत्युभयाधीन–श्चित्तवृत्तिनिरोधः।।

अर्थात् चित्त रूपी नदी दो प्रकार से बहती है। एक कल्याण मार्ग की ओर और दूसरी पाप मार्ग की ओर। हमारा चित्त जिसका प्राग्भार कैवल्य से है और विवेक ज्ञान की ओर जिसका प्रवाह झुका रहता है वह मार्ग मनुष्य को कल्याण की ओर खींचकर ले जाता है, और जिसका आदि स्तोत्र संसार से है वह चित्त अविवेक अज्ञान की यानी नीचे की ओर बहा करता है, वह पाप की ओर बहा ले जाता है। एक अच्छा साधक बुद्धि बल से विषय स्तोत्र का दमन करके विवेक दर्शन का अभ्यास करे तो कल्याण की पराकाष्ठा को पा सकता है। विषय स्त्रोत को दमन करने के लिए वैराग्य की

आवश्यकता है और विवेक स्त्रोत के उद्‌घाटन के लिए तीव्रतम् अभ्यास की जरूरत रहती है। इस प्रकार से वैराग्य और अभ्यास दोनों के द्वारा ही चित्तवृत्ति निरोध हो सकता है। अभ्यास के विषय को बतलाते हुए भगवान पतंजलि देव के इसी प्रकरण को भगवान श्रीकृष्ण–चन्द्र ने भगवद्‌गीता में भली प्रकार से समझाया है। अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण योग का उपदेश करते हैं और आदेश देते है कि हे अर्जुन ! तुम योगी बनो अभ्यास और वैराग्य की सतत् साधना करो। यही योगी बनने का एक मात्र साधन है।

मनोनिरोध के उपाय का यही प्रकार उपनिषदों में और अन्यान्य धर्मग्रन्थों में भी बतलाया गया है। योगदर्शन के–

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

सूत्र पर व्यासभाष्य की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

चित्तस्यावृत्तिकस्य प्रशान्तवाहिता स्थितिस्तदर्थः प्रयत्नोः वीर्य मुत्साहस्त–त्संपिपादयिषया तत्साधनानुष्ठानमभ्यासः।

अर्थात् वृत्ति रहित चित्त को प्रशान्त में ले आने के लिए दृढ़ता और उत्साहपूर्वक जिन साधनों का अनुष्ठान किया जाता है वह अभ्यास कहलाता है, एक साधक को अभ्यास भी किस प्रकार करना चाहिए यह भी हर व्यक्ति नहीं जान सकता। जो व्यक्ति एक दिन अभ्यास करके दूसरे दिन छोड़ देते हैं वह अभ्यास के उत्कृष्ठ फल को नहीं पा सकते। उसका निदर्शन भी भगवान पतंजलि देव ने स्पष्टतया भली प्रकार से इस सूत्र में किया है–

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य्य सत्कारा सेवितो दृढ़भूमिः।

हम ऊपर बता चुके हैं कि वह अभ्यास लम्बे समय तक किया हुआ और लगातार किया हुआ और आदरपूर्वक किया हुआ परिपक्व स्थिति का सम्पादन करता है। इस सूत्र पर भी व्यास भाष्य की पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़िये–

दीर्घकालासेवितः निरन्तरासेवितः तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः सत्कारवान् दृढ़भूमिर्भवति व्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येवान विभूत विषय इत्यर्थः।

अर्थात् अभ्यास करने वाले साधक को चाहिए कि वह उस अभ्यास को लम्बे समय तक करे और लम्बे समय तक करने का अर्थ यह है कि कम से कम यदि कोई व्यक्ति किसी मन्त्र का जप करना आरम्भ करता है तो उस मन्त्र का जप कम से कम दो घण्टे तो बराबर करना ही चाहिए। दो या तीन घण्टे लगातार मन्त्र जाप करने के बाद कम से कम मेरुदण्ड को सीधा रखकर एक या दो घण्टे अपनी शारीरिक स्थिति को

देखकर ध्यानयोग का अभ्यास भी करना चाहिए क्योंकि हमारा शास्त्रीय आदेश यह स्पष्टीकरण के साथ बतलाता है कि–

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्याय मामनेत् स्वाध्याय योगसम्पत्या–परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय करने से, मन्त्र–जाप आदि करने से ध्यानाभ्यास के लिए मन एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और ध्यानाभ्यास में स्वाध्याय किये जाने वाले मन्त्र का अभ्यास करे। जहाँ पर स्वाध्याय और योग दो की सद्सम्पत्ति इकट्ठी हो जाती है वहाँ परमात्मा का प्रकाश हो जाया करता है, किन्तु यह सब अभ्यास लम्बे समय तक करना ही चाहिए। लम्बे समय का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि एक साधक चार या छः घण्टे कर लेता है तो वही उसका लम्बा समय मान लिया जाये। ऐसी बात नहीं। उस प्रकार तो करना ही चाहिए किन्तु लम्बे समय का अर्थ वर्षों से है। उस अभ्यास को कई वर्षों नक करते ही रहना चाहिए किन्तु साथ–साथ निरन्तर नित्य नियम से करते रहना चाहिए। अभ्यास काल में साधक को तप, ब्रह्मचर्य आदि सभी व्रतों का पालन भी करना चाहिए। जो साधक इस प्रकार से जितेन्द्रियता पूर्वक और तपश्चर्या–पूर्वक अभ्यास को बढ़ाते हैं वह अभ्यास उनका बिल्कुल दृढ़ हो जाया करता है। तपस्या और जितेन्द्रियता के लिए आहार–विहार की नियमितता भी साधक के लिए परम कल्याणकारी रहती है। भगवान कृष्ण ने एक अभ्यासी साधक के लिए श्रीमद्भगवद् गीता में सात्विक आहर–विहार के लिए इस प्रकार का निर्देश दिया है–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति,
न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य,
जाग्रतो नैव चार्जुन।।
युक्ताहार विहारस्य,
युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य,
योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् जो लोग बहुत अधिक खाते हैं उन पर अन्न के प्रभाव से शरीर में आलस छाया रहता है, अतः ऐसे साधक सतत् अभ्यास नहीं कर सकते प्रतिकूल इसके जो साधक बिल्कुल खान–पीना छोड़कर अभ्यास करते हैं वे भी दृढ़ता से साधन नहीं कर

सकते क्योंकि उनका मन भूख के कारण अन्न ध्यान में ही लगा रहेगा। इसके अतिरिक्त जो लोग बहुत अधिक सोते हैं उनका सारा समय निद्रा में ही व्यतीत हो जाया करता है। या जो लोग बहुत अधिक जागते रहते हैं उनकी नाड़ियाँ भी विश्राम न पाकर उन्माद को पैदा करने वाली बन जाती हैं। इसलिए योगाभ्यासी साधक को चाहिए कि वह ठीक समय पर सो जाये तथा ठीक समय पर उठ जाये। ठीक समय पर भोजन कर ले अपने आहार–विहार को नियमित और सीमित रखे, तथा अपनी सभी हरकतें परमित रखे तो उसका वह अभ्यास अवश्य ही दृढ़ता का सम्पादन करेगा।

साधक का जीवन कैसा होना चाहिए इसका एक और संकेत भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार दिया है–

विविक्तसेवी लघ्वाशी,
यतवाक्काय मानसः।
ध्यान योगपरो नित्यं,
वैराग्यं समुपाश्रितः।।
अहंकारं बलंदर्पं,
काम क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो,
ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् अभ्यासी साधक को एकान्त–प्रदेश में अभ्यास करना चाहिए। जहाँ पर किसी भी प्रकार से कोई सांसारिक अन्तराय पैदा न हो और हल्के आहार का सेवन करना चाहिए। आहार हल्का हितकर और परिमित करे इसके साथ अपने ही मन वाणी और शरीर पर नियन्त्रण रखें, कोई भी निकृष्ट व्यवहार न वाणी से होने दें, न मन से कोई भी अशुभ चिंतन न करें और न ही शरीर से कोई अनुचित चेष्टा करें। मन में वैराग्य को धारण करके अपने अभ्यास को नित्य नियम से करता रहे। अहंकार, तबल का अभिमान, दर्प, काम और क्रोध काम लोलुपता को छोड़कर यदि साधक शान्त भाव से रहेगा तो उसके मन में अवश्य ही ब्रह्मतत्त्व का प्रकाश हो जायेगा।

सम्पादकीय–

योग एवं विकासवाद

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

सृष्टि उत्पत्ति क्रम का निरूपण वेद में निम्न मंत्र से किया गया है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ हिरण्यगर्भ पैदा हुए, वह समस्त प्राणियों का आश्रय था। उसी ने पृथ्वी, द्युलोक और पृथ्वी पर समस्त जीवों को धारण किया हुआ था। उस हिरण्यगर्भदेव को छोड़कर हम किस देव की उपासना करें ?

हिरण्य का अर्थ है स्वर्ण अर्थात् जिसके गर्भ में स्वर्णमयी तेजपुंज हो वह हुआ हिरण्य गर्भ। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को हिरण्यगर्भ माना जाता है। भगवान् सूर्य को भी हम हिरण्यगर्भ के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

सृष्टि उत्पत्ति व विकास के सिद्धान्त को मानने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार सबसे पहले सूर्य ही था। वह सूर्य अपनी परिधि में घूमता था। चक्कर लगाते–लगाते उसमें से एक गोला उससे अलग होकर गिर गया। धीरे–धीरे सहस्त्रों वर्षों में वह ठण्डा हो गया, यही पृथ्वी बन गई। इसमें सबसे पहले जलीय एक कोशीय जीव अमीवा उत्पन्न हुआ। अमीवा युग्लीना इत्यादि एक कोशीय जीव हुए, इन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से ही देखा जा सकता है। इसके पश्चात् बहु–कोशीय जीव हुए। जलीय जीवों में मछलियाँ उत्पन्न हुई, इसके अनन्तर जल स्थल दोनों में रहने वाले जीवों की उत्पति हुई। इसके पश्चात् सरीसृप जो पेट के बल चलने वाले जीव हैं, वे हुए, फिर पक्षी व स्तनधारी वर्ग के प्राणी उत्पन्न हुए। इस प्रकार विकास पाते–पाते बन्दर की आकृति उत्पन्न हुई। इन्हीं बन्दरों से मनुष्य का रूप सामने आया। विकासवादियों के सिद्धान्त को मानने वालों में से चार्लस डार्विन का (Evolutionary theory of Darwin)

''एकोऽहं बहुस्याम प्रजयेय। स एक्षत् स ततोऽतप्यत्।''

उस ईश्वर ने अपने संकल्प से ही सृष्टि की उत्पत्ति कर दी।

श्रीमद्भागवत पुराण में प्राणियों की उत्तरोत्तर क्रम से श्रेष्ठता बतलाई गई है।

जीवा: श्रेष्ठा ह्यजीवानां, तत: प्राण भृत: शुभे।
तत: सचित्ता: प्रवरास्त, तश्चेन्द्रिय वृत्तय:।।
तत्रापि स्पर्श वेदिभ्य:, प्रवरा रस वेदिन:।।
तेभ्यो गन्धविद: श्रेष्ठा, स्तत: शब्दविदो वरा:।
रूप भेद विदस्तत्र, तत्र ततश्चोभयतोदत:।
तेषां बहुपदा: श्रेष्ठा, श्चतुष्पादस्ततो द्विपात्।।
ततो वर्णाश्च चत्वार:, तेषां ब्राह्मण उत्तम:।
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो, ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिक: तत:।।

अर्थात् पाषाणादि अचेतनो की अपेक्षा वृक्षादि जीव श्रेष्ठ है उनसे भी श्वास लेने वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी मन वाले प्राणी उत्तम और उनसे भी इन्द्रियों की वृत्ति वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं। इन्द्रियवान प्राणियों से भी केवल स्पर्श का अनुभव करने वाले तथा उनसे रस का ग्रहण करने वाले जलीय जीव मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं। उनसे भी गन्ध का अनुभव करने वाले भ्रमरादि श्रेष्ठ है। भ्रमरादि से भी शब्द ग्रहण करने वाले सर्पादि श्रेष्ठ हैं। उनमें भी रूप का अनुभव करने वाले उत्तम हैं। उनसे भी उपर नीचे दाँत वाले श्रेष्ठ हैं। सर्पादि बिना पैर वालों से बहुत से चरण वाले श्रेष्ठ हैं। बहुत चरण वालों से चार चरण वाले तथा चार पाद वालों से भी दो पाद वाले श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों में भी वेद को जानने वाले उत्तम हैं। वेदज्ञों में भी वेद का तात्पर्य जानने वाले श्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार से सृष्टि क्रम में देश विधि सृष्टि में सत्व, रज व तम की न्यूनाधिक्य के कारण उत्तरोत्तर श्रेष्ठता बतलाई गई है। आधिभौतिक सृष्टि में भी **''ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था:''** के नियमानुसार सतोगुण वाले जीव ऊपर के लोकों में रजोगुण वाले मध्य के मर्त्य लोक में तथा तमोगुण वाले पृथ्वी के नीचे के लोकों में रहते हैं। योग–दर्शन में **''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:''** सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यासदेव जी ने समस्त संसार के प्राणियों को पाँच अवस्थाओं में बाँट दिया है। वे अवस्थायें हैं–

(1) मूढ़, (2) क्षिप्त, (3) विक्षिप्त, (4) एकाग्र, (5) निरुद्ध। इनमें मूढ़ावस्था के प्राणी वे हैं जो केवल आहार, निद्रा, भय, मैथुन की वृत्ति वाले हैं, पशु–पक्षी इसी वर्ग के

प्राणी हैं। ये प्राणी बौद्धेय विकास शून्य होते हैं। क्षिप्तावस्था के प्राणी राक्षसादि हैं, जो पूर्ण तमोगुणी होते हैं। प्रमाद–निद्रा व आलस्य व पर–पीड़न इस अवस्था के प्राणियों का स्वभाव होता है। विक्षिप्त अवस्था के प्राणी वे होते हैं, जिनमें रजोगुण व सतोगुण दोनों रहते हैं। ये प्राणी धर्म, कर्म में विश्वास करने वाले स्वर्ग–नरक व ईश्वर के अस्तित्व में आस्था वाले हुआ करते हैं। देवगण भी इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इसके बाद की अवस्था एकाग्रावस्था है, जिसमें सतोगुण की प्रधानता रहती है। **'सत्वं लघु प्रकाशक मिष्टम्'** के अनुसार सतोगुणी प्राणियों के अन्तःकरण में प्रकाश का उदय हो जाता है। **''सर्वे भवन्तु सुखिना:''** की भावना इस वर्ग के मनुष्यों में पाई जाती है। विक्षिप्त अवस्था में आ जाने पर मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी हो जाता है, उसमें मानवीय गुण आने लगते हैं। धर्म और अधर्म दोनों मिले–जुले रहते हैं। एकाग्र अवस्था में पहुँच जाने पर वे मानवोत्तर श्रेणी में आ जाते हैं। सत्व गुण का पूर्ण उदय हो जाने पर एकाग्रता की पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाता है। जिसमें, उसे सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि रुपी ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। आठ प्रकार की प्रज्ञा में ऋतम्भरा सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रज्ञा के आ जाने पर योगी सत्य दृष्टा बन जाता है, उसकी बुद्धि में जो भी बात आयेगी वह सत्य ही आयेगी। ऐसे व्यक्ति ही किसी सिद्धान्त को सिद्धान्तित करने वाले होते हैं।

निरोधावस्था आ जाने पर चित्तवृत्तियों का बिल्कुल निरोध हो जाता है, जिसमें क्लिष्ट वृत्ति तो पूर्ण रूप से दब जाते हैं। अक्लिष्ट वृत्तियाँ शेष रहती हैं, जो हमें विवेक मार्ग में ले जाने के लिए सहायक होते हैं। चित्त के निरोध परिणाम में व्युत्थान संस्कारों का क्षय तथा निरोध संस्कारों का उदय होता रहता है। **''तज्जः संस्कारों अन्य संस्कार प्रतिबन्धी''** के अनुसार समाधि के जो संस्कार होते हैं, उनको भी प्रज्ञाकृत संस्कार हटाते व दबाते रहते हैं। अन्त में पर–वैराग्य के पूर्णतया दृढ़ हो जाने पर चित्त की समस्त वृत्तियाँ अपने कारण भूत अव्यक्त या परा–प्रकृति में लय हो जाती हैं। पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, यही निर्बीज समाधि है। जिसके निरन्तर दृढ़ता हो जाने पर योगी को कैवल्य लाभ हो जाता है।

योग–दर्शन में वर्णित इन पाँच अवस्थाओं में मूढ़ और क्षिप्त अवस्था के प्राणी योग में प्रवेश नहीं करते, क्योंकि इनका स्वभाव ही इस प्रकार का होता है कि वे इस ओर आना ही नहीं चाहते, क्योंकि इनमें विवेक बुद्धि नहीं होती है।

विक्षिप्तावस्था के प्राणी योगारूढ़ होना चाहते हैं। उन लोगों के लिए योग–दर्शन

में तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान तथा श्रद्धा–वीर्य–स्मृति–समाधि और प्रज्ञा आदि उपाय हैं। इसके साथ–साथ अभ्यास और वैराग्य भी नितान्त आवश्यक है। उत्तरोत्तर भूमिका को प्राप्त करने के लिए दीर्घकालिक निरन्तर व तप ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा के साथ किया गया अभ्यास दृढ़ भूमिका को प्रदान करने वाला होता है। तप–स्वाध्याय आदि अंगों का ठीक प्रकार से परिपालन करने पर साधक के चित्त के रजोगुण व तमोगुण दूर हो जाते हैं तथा सतोगुण का उद्‌भव हो जाता है।

सतोगुण वृद्धि के दो उपाय हैं–एक तो हठयोग द्वारा जिसमें विभिन्न आसन अष्टविध प्राणायाम, बन्ध एवं मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है, जिससे इन्द्रियों के मल जल जाया करते हैं तथा पूर्णरूपेण नाड़ी–शोधन हो जाता है। नाड़ी–शोधन हो जाने पर चित्त की एकाग्रता की योग्यता बढ़ जाती है। क्योंकि नाड़ियाँ ही चित्त की प्रसार भूमि है। प्राणायाम से ''**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्**'' अर्थात् प्रकाश के रास्ते में जो आवरण है उसका क्षय हो जाता है।

दूसरा उपाय है मनोलय का जो हठयोग के उपाय को छोड़कर (अनाधिकारी होने से) राजयोग व ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं। उनको भी सतोगुण की वृद्धि से एकाग्रता प्राप्त हो जाती है। गुरुदेव प्रदत्त मंत्र का निरन्तर श्वास–प्रश्वास से जाप तथा उनके बताये गये शरीरगत चक्रों का ध्यान करना होता है। गुरु–मंत्र के जाप से अन्तःकरण के मल–आवरण दूर हो जाते हैं, जिससे सतोगुण की वृद्धि होती है। श्वास–प्रश्वास द्वारा अजपा गायत्री मंत्र का निरन्तर अभ्यास ही सर्व–श्रेष्ठ है।

शास्त्रों में अजपा की बड़ी महिमा कही गई है–

प्रथमा प्रतिमा पूजा, जपःस्तोत्राणि मध्यमा।
ध्यान पूजा उत्तमा, सोऽहं हि उत्तमोत्तमाः।।

उपरोक्त श्लोक में क्रम के उत्तरोत्तर साधनों की श्रेष्ठता बताई गई है।

योग एक ऐसा उपाय है जिससे मनुष्य जीव–सत्ता को लाँघ कर ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त कर लेता है। शास्त्रों में जीवात्मा के लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं–सुख–दुख, राग–द्वेष, इच्छा–प्रयत्न और अज्ञान ये सब जीवात्मा में विद्यमान होते हैं। अज्ञान–जन्य–राग–द्वेष आदि क्लेशों से बँधा होने के कारण वह पशु कहा जाता है। **'मनुष्यो देवानां पशु'** कहा गया है, क्योंकि देवताओं में कुछ विशिष्ट ताकतें होती हैं, जिससे वह मनुष्य पर शासन करते हैं। देवताओं में दूर–दर्शन, दूर–श्रवण तथा अष्ट–सिद्धियाँ स्वाभाविक होती हैं, वे वर–शाप दे सकते हैं।

योग–दर्शन में ईश्वर का लक्षण इस प्रकार किया गया है–

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष–विशेषः ईश्वरः।

अर्थात् जो क्लेश कर्म–विपाक एवं आशय से संस्पृष्ट नहीं है वह ईश्वर है अर्थात् इनमें यह क्लेशादि कभी भी नहीं होते हैं। ईश्वर के इस लक्षण से जीव का लक्षण भी हो गया। जीव क्लेश कर्म–विपाक से परामृष्ट है अर्थात् जीव में यह क्लेश–कर्म आदि सदा लगे हुए हैं। योगियों का परम लक्ष्य है क्लेश कर्मादि बन्धनों को काटकर ईश्वरीय सत्ता में आ जाये। प्राणायामादि के द्वारा या गुरु प्रदत्त मंत्र से एवं ध्यानयोग के अभ्यास द्वारा संयम अवस्था को प्राप्त हो जाने पर योगी योग–दर्शन के विभूति पाद में वर्णित सभी सिद्धियों व विभूतियों को प्राप्त कर लेता है। जिनके प्राप्त हो जाने पर अष्ट–सिद्धियाँ एवं दूर–दर्शन, दूर–श्रवण आदि सिद्धियाँ योगी में प्रादुर्भूत होने लगते हैं। वह करोड़ों मील दूर का देखने वाला, करोड़ों मील दूर के शब्द को सुनने वाला बन जाता है–'

ततः प्रातिभ श्रावण आदर्श स्वाद वार्ता जायन्ते।

(यो. सू. 3/36)

श्वेताश्वरोपनिषद् के इस मन्त्र को चरितार्थ करने वाला बन जाता है।

अपाणिपादो जवनो गृहीता स पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

योग–दर्शन में–

ततो मनोजवित्वम् विकरणभावः प्रधानजयश्च।

–यो. सू. 3/48

योगी का मन जहाँ–जहाँ पहुँचता है, तत्काल वहाँ शरीर भी पहुँच जाता है। मन के वेग के साथ शरीर का पहुँचना मनोजविता नाम की सिद्धि है। विकरण भाव का अर्थ है बिना ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि को ग्रहण करना **''स पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः''** की स्थिति प्राप्त हो जाती है। प्रधानजय का अर्थ है सम्पूर्ण स्थूल व सूक्ष्म भूतों पर विजय प्राप्त कर लेना। इस सिद्धि के आ जाने पर योगी सम्पूर्ण रूप से प्रकृति पर शासन करने वाला हो जाता है। जो पहले प्रकृति से शासित था वह अब प्रकृति पर शासन करने वाला बन जाता है तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा की भी दृढ़ स्थिति हो जाती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उसे धर्ममेघ नाम की समाधि मिल जाती है। जिसके आ जाने पर सर्व ज्ञातृत्व और सर्वाधिष्ठातृत्व की योग्यता आ जाती है।

हृदय–ग्रन्थि व अज्ञान–ग्रन्थि विदीर्ण हो जाती है। **''भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यते सर्वसंशयः क्षीयते चास्य कर्माणि–तस्मिन् दृष्टे परावरे।''**

उस परावर आत्म–दर्शन के हो जाने पर, क्लेशकर्म दूर हो जाने पर, आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता। तब वह ईश्वर कोटि में आ जाता है।

कुछ दर्शनकार मानते हैं कि जीव कभी भी ईश्वर कोटि में नहीं पहुँचता है। परन्तु योग एवं वेदान्त–दर्शन के अनुसार वह उसी अखण्ड तेज में विलीन हो जाता है। घट के टूट जाने पर जैसे घटाकाश, महाकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार से सूक्ष्म व कारण के भी अपने कारण में लय हो जाने पर त्रि–शरीरी घट के टूट जाने पर जीवात्मा परमात्मा में मिल जाता है।

योग से ही मनुष्य का शरीर मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास की पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। विभिन्न प्रकार के आसन, बन्ध–मुद्रायें तथा प्राणायाम द्वारा पूर्ण स्वस्थ रह जाता है। रोगाक्रान्त हो जाने पर उनमें मुक्ति भी यौगिक साधनाओं से पाई जाती है। आसन, बन्ध, मुद्रायें और अष्टविध प्राणायाम द्वारा प्राण बलिष्ठ व तेजस्वी हो जाते हैं। प्राण जीवनी शक्ति है व जीवन का मूलाधार है। धारणा–ध्यान के अभ्यास द्वारा मन की एकाग्रता के पा जाने पर मन की शक्तियाँ पूर्णरूपेण विकसित हो जाया करती हैं।

जप–तप, वैराग्य एवं ध्यानयोग द्वारा बौद्धिक विकास पूर्णता पा जाया करता है, जिससे अणिमादि ऐश्वर्यों का प्रादुर्भाव हो जाता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा उदित होती है, जिसमें दृढ़ता पा जाने पर प्रकृति पुरुष–विवेक हो जाता है, जो कैवल्य का दाता है।

अतः योग के द्वारा ही मनुष्य अपने जीव–सत्ता को छोड़कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है।

(सम्पादकीय–मई 1987)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

एकादश स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में श्री भगवान् का स्वधाम गमन वर्णित है। भगवान शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! सर्वदेवों के उपस्थिति में भगवान अपने को आत्मस्थ कर नेत्र बन्द कर लिये। भगवान का श्री विग्रह उपासकों के ध्यान और धारणा का आधार तथा सभी के लिये परम रमणीय आश्रय है, इसलिये उन्होंने अन्य योगियों के समान योगधारणा द्वारा जलाया नहीं, सशरीर अपने धाम में चले गये। उस समय स्वर्ग में नगारे बजने लगे और आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। भगवान श्रीकृष्ण के पीछे–पीछे इस लोक से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति और श्रीदेवी भी चली गयीं।

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यान मंगलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्।।6.31.11।।
दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतु सुमनसश्च खात्।
सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः।।7.31.11।।

भगवान् श्रीकृष्ण की गति मन वाणी के परे है। जब भगवान अपने धाम में प्रवेश करने लगे तब ब्रह्मादि देवता भी उन्हें न देख सके। ब्रह्मा जी और भगवान शंकर आदि देवता भगवान् की यह परम योगमयी गति देखकर बड़े विस्मय के साथ प्रशंसा करते हुये अपने–अपने लोक में चले गये।

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः।
विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा।।10.31.11

भगवान् का मनुष्यों के समान जन्म लेना, लीला करना और फिर संतरण कर लेना उनकी योग माया का विलास है। वे स्वयं ही इस सृष्टि को रचकर, उसमें प्रवेश कर विहार करते हैं और अन्त में संहार कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। परीक्षित्! सान्दीपनी गुरू का पुत्र यमपुरी चला गया था, परन्तु उसे वे मनुष्य शरीर के साथ लौटा लाये। तुम्हारा ही शरीर ब्रह्मास्त्र से जल चुका था परन्तु उन्होंने जीवित कर दिया और तो क्या कहूँ, उन्होंने कालों के महाकाल भगवान शंकर को भी युद्ध में जीत लिया और स्वयं को आघात करने वाले व्याध को भी सदेह स्वर्ग भेज दिया। भगवान श्रीकृष्ण

सम्पूर्ण जगत की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के निरपेक्ष कारण हैं। आत्मनिष्ठ पुरुषों के लिये यही आदर्श है कि वे शरीर रखने की चेष्टा न करें।

इधर दारूक द्वारिका पहुँचकर अपने को सँभालकर यदुवंशियों के विनाश का पूरा विवरण वसुदेव जी तथा महाराज उग्रसेन को कह सुनाया। उसे सुनकर बहुत से लोग शोक से मूर्छित हो गये। देवकी, रोहणी और वसुदेव जी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम को न देखकर शोक से मूर्छित हो गये। भगवद्विरह से व्याकुल होकर वहीं अपने प्राण छोड़ दिये। कुलकुटुम्ब की स्त्रियाँ अपने-अपने पति के शरीर के साथ अग्नि में प्रवेश कर गयी। भगवान श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उनके ध्यान में मग्न होकर अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं। परीक्षित! अर्जुन अपने प्रियतम सखा श्रीकृष्ण के विरह में पहले अत्यन्त व्याकुल हुए फिर उन्होंने गीतोक्त सद्उपदेशों का स्मरण करके अपने को सँभाला।

भगवान के न रहने पर समुद्र ने एकमात्र भगवान् श्री कृष्ण का निवास-स्थान छोड़कर एक ही क्षण में सारी द्वारका डुबो दी।

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत् क्षणात्।
वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भागवदालयम्।।23.31।।

अर्जुन बची-खुची स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों को लेकर इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँ सबको यथायोग्य बसाकर अनिरुद्ध के पुत्र वज्र का राज्याभिषेक कर दिया। राजन्! तुम्हारे दादा युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को अर्जुन से ही यह बात मालूम हुई कि यदुवंशियों का संहार हो गया है। तब उन्होंने तुम्हें राज्यपद पर बैठाकर हिमालय की वीरयात्रा की।

परीक्षित! मैंने तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण की जन्मलीला, कर्मलीला सुनायी। यह सभी पापों का हर्ता है।

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभते।।28.31।।

दशम स्कन्ध में जहाँ भगवान के बाल्यकाल से लेकर द्वारका निवास करते अगणित योग ऐश्वर्य युक्त लीला चरित्र का विवरण परम हंस श्री शुकदेव जी ने परीक्षित को मुर्तिमत्ता शक्ति से युक्त कथा सुनाया है वही एकादश स्कन्ध में मुख्यतया सद्पात्र को माध्यम बनाकर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का मर्म सिद्धान्तों, उद्धरणों द्वारा समझाया गया है।

बारहवें स्कन्ध में, परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर श्री शुकदेव जी ने कलियुग के राजवंशों का अति सूक्ष्म इतिहास बताया है। प्रथम अध्याय इसी विषय को उद्घाटित करने वाला है। निश्चय ही इसमें योग तथा आध्यात्म की बात कहने का कोई प्रयोजन नहीं दीख पड़ता। परन्तु मेरे मत से यह प्रथम अध्याय भी हमारे ऋषियों–मुनियों की योग दृष्टि का ही परिचायक है। लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व ही भविष्य में कलियुग में घटित होने वाले राजाओं, मनुष्यों और वर्णाश्रमों में ह्रास, पतन की भविष्य वाणी सटीक योग दृष्टि से किया गया है। अतः सिद्धयोग के सुधी पाठक इस स्कन्ध में वर्णित चर्चा को अपने अन्त:करण की परख हेतु यदि करें तो निश्चय ही आत्मोत्थान में विकास होगा। आज गुरुडम्भ, पाखण्ड धीरे–धीरे विश्व में अपना प्रसार कलिधर्म पोषण हेतु होता जा रहा है। आत्मानुभव से हीन शिश्नोदर पूर्ति करने वाले, संन्यासी, ब्रह्मचारी, लोभी गृहस्थी सभी का चरित्र–चित्रण परमहंस भगवान शुकदेव जी ने इस स्कन्ध के अध्यायों में किये हैं।

अस्तु!

राजा परीक्षित ने पूछा–भगवन्! जब भगवान श्रीकृष्ण अपने धाम पधार गये, तब पृथ्वीपर किस वंश का राज्य हुआ ? तथा आगे किसका राज्य होगा।

श्री शुकदेव जी ने कहा–जरासन्ध के पिता वृहद्रथ के वंश में अन्तिम राजा पुरञ्जय होगा। शुनक नामक उसका मन्त्री उसे मारकर स्वयं राज्य करेगा। प्रद्योत नामक पुत्र और इसके वंश के पाँच नरपति एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे।

इसके बाद शिशुनाग नाम का राजा होगा। शिशुनाग वंश में दस राजा होंगे। ये सब कलियुग में तीन सौ आठ वर्ष पृथ्वी पर राज करेंगे। शिशुनाग वंश का अन्तिम राजा महानन्दी की शुद्रा पत्नी से नन्द नाम का पुत्र होगा। वह बड़ा बलवान होगा। महासन्त्री 'महापद्म' नामक निधि का अधिपति होगा। वह क्षत्रीय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा राजालोग शुद्र और अधार्मिक हो जायेंगे। महापद्म के आठ पुत्र सौ वर्ष तक इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे। कौटिल्य, वात्स्यान तथा चाणक्य नाम के प्रसिद्ध ब्राह्मण नन्द वंश का नाश कर डालेगा। तद्पश्चात् कलियुग में मौर्यवंशी नरपति पृथ्वी का राज्य करेंगे। वही ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर आरुढ़ करेगा। चन्द्रगुप्त का पुत्र होगा वारिसार और वारिसार का पुत्र होगा अशोक वर्धन।

परीक्षित्! मौर्यवंश के दस नरपति कलियुग में एक सौ तैंतीस वर्ष तक राज्य करेंगे।

इसके पश्चात् शुंगवंश के दस नरपति एक सौ बारह वर्ष तक पृथ्वी का राज करेंगे। शुंगवंश के पश्चात् कण्ववंसी नरपति पहले के राजाओं की अपेक्षा कम गुण वाले होंगे।

कण्ववंश के चार नरपति कलियुग में तीन सौ पैतालिस वर्ष तक राज्य करेंगे।

परीक्षित्! ज्यों–ज्यों घोर कलियुग आता जायेगा राजा लोग शुद्र तुल्य और ब्राह्मण संस्कार शून्य हो जायेंगे। सिन्धुतट, काश्मीर मण्डल पर शूद्रों और म्लेच्छों का राज्य होगा। यह सब परले सिरे के झूठे, अधार्मिक होंगे। दूसरों की स्त्री और धन हड़पने को सर्वदा उत्सुक रहेंगे। इनकी शक्ति और आयु थोड़ी होगी। रजोगुण और तमोगुण से अंधे रहेंगे। राजा के वेष में म्लेच्छ ही होंगे। वे लूट–खसोटकर अपनी प्रजा का खून चूसेंगे।

जब देश के ऐसे शासक होंगे तब देश की प्रजा में भी वैसा ही स्वभाव, आचरण हो जावेगा। वे आपस में भी एक दूसरे को उत्पीड़ित करेंगे और अन्ततः सबके सब नष्ट हो जायेंगे।

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसाऽऽवृताः।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः॥42.1.12

(**नोट** : महानन्द वंश के नाश कर्ता चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त मौर्य आदि का विवरण ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ईसा के पूर्व 350 वर्ष के लगभग बैठता है।)

घरेलू औषधि हींग

हींग के कई नाम हैं। सहसवेधि, जतुक, हिंगु रामठ आदि हींग के संस्कृत नाम हैं।

गुण–हींग–गर्म, पाचन, रुचिकारी, तीक्ष्ण वात् कफ शूल, गुल्म, आनाह तथा कृमि को नष्ट करने वाला है। उत्पत्ति स्थान भेद से हींग को दो प्रकार की है–

यथा वाह्लीक, वा रामठ। वाह्लीक फारस के देशों में पाया जाता है। अफगानिस्तान या पंजाब में पाये जाने वाले हींग को रामठ कहते हैं। बाजार में कई प्रकार के हींग मिलते हैं। कन्धारी हींग, यूरोपीय हींग, भारतीय हींग। भारतवर्षीय हींग उत्तम, कन्धारी मध्यम तथा पिण्ड अधम गुण वाला माना जाता है। हींग नाड़ीगत पीड़ा अकस्मत तथा मनोविकार में प्रयुक्त होता है। कास में, पुराने कफ रोग में या श्वास में प्रयुक्त होता है।

वायु नाशक या आध्मानहर (अफारा) होने के कारण गृहणी शूल, या आमाशदो भव पीड़ा में प्रयुक्त होता है। मलेरिया में भी प्रयोग कर सकते हैं। बार–बार गर्भ स्राव में प्रयुक्त होता है। गर्भस्राव रुकता है। घरों में आमतौर में उड़द की दाल में हींग का छौंक लगाया जाता है।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

खीर चोरा (गोपीनाथ) मन्दिर

—अन्तूराम यादव, प्रयागराज, मो. 9936678368, 7376691758

प्रातः स्मरणीय आनन्दकन्द योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन! सभी आदरणीय भाई–बहनों को इस छोटे भाई की तरफ से सादर जय गुरुदेव! जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हमारे गुरुदेव भगवान को बचपन से ही भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हुआ करता था और हम सब यह भी जानते हैं कि वृन्दावन में साधना काल के दरम्यान वृन्दावन की मशहूर रास–लीला मण्डली के मालिक को भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह धोती–कुर्ता धारण किये हुए साधारण सा दिखने वाला योगी कोई और नहीं, मैं ही हूँ। भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करते–करते गुरुदेव भगवान गद्गद् कण्ठ हो जाया करते थे। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कही गई गीता को सीने से लगाते थे, माथे पर रखते थे और प्रतिदिन गीता का पाठ करते और कराते थे। जहाँ कहीं भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गुणगान किया जाता है, मेरा भी मन हठात् उस तरफ चला जाता है और भगवान श्रीकृष्ण के बारे में गुरुदेव भगवान द्वारा कही गई एक–एक अमृत वाणी सामने आने लगती है।

राजस्थान के सन्त हैं–श्री मुरलीधर महाराज। प्रायः वे गायन के माध्यम से श्री रामचरित मानस पर प्रवचन किया करते हैं। एक बार दूरदर्शन पर मैं उनका प्रवचन सुन रहा था। कथा के दरम्यान भगवान श्रीकृष्ण के उस श्री विग्रह का वर्णन कर रहे थे जो भगवान श्री रामचन्द्र जी द्वारा त्रेता युग में बनाया गया था। आज मेरे मन में यह भाव उठ रहा है कि श्री सन्त द्वारा जो कुछ मैंने सुना है, अपने टूटे फूटे शब्दों में आप के समक्ष प्रस्तुत करूँ।

सन्त श्री मुरलीधर महाराज का उड़ीसा प्रान्त के बालेश्वर जिले में प्रवचन का कार्यक्रम था। वहाँ के भक्तों ने बताया कि महाराज, यहाँ से कुछ दूर एक खीर चोरा (गोपीनाथ) मन्दिर है। उस मन्दिर में भगवान श्रीकृष्ण की विश्व की प्राचीनतम् मूर्ति विराजमान है। देश विदेश से भी लोग यहाँ दर्शन करने आते हैं। चलें, हम लोग भी दर्शन कर आवें। सन्त श्री पाँच–छः लोगों के साथ एक गाड़ी में सवार होकर वहाँ गये। जैसे ही सब लोग वहाँ पहुँचे, मन्दिर का कपाट बन्द हो गया। सन्त श्री ने सोचा कि अगर मन्दिर खुलने की प्रतीक्षा करेंगे तो प्रवचन का समय निकल जायेगा। सन्त ने कहा आज वापस चलें, दूसरे दिन दर्शनार्थ

आया जायेगा। जब वे लोग गाड़ी के पास आये तो देखा कि गाड़ी की चाभी ही नहीं मिल रही है। मन्दिर के प्रांगण एवं आस–पास चप्पे–चप्पे ढूँढ़ डाले चाभी का कहीं अता–पता नहीं। चाभी ढूँढ़ने में काफी विलम्ब हो गया तब तक मन्दिर का कपाट खुल गया। सब लोगों ने विधिवत् खीर–चोरा भगवान का दर्शन किया। दर्शन करके लोग विचार कर रहे थे किसी मिस्त्री को बुलाया जाये और गाड़ी की चाभी का कोई विकल्प निकाला जाये। सन्त श्री ने अपनी आँखो देखी हाल बताई। जब सब लोग विचार–विमर्श कर ही रहे थे इसी बीच एक छोटा बालक हाथ में चाभी हिलाते हुए इनकी तरफ आया और कहा अंकल यह चाभी आपकी है क्या ? चाभी पाकर खीर–चोरा भगवान की जय–जयकार करते हुए वे लोग गाड़ी के पास गये। सन्त श्री ने भक्तों से कहा–भाई, उस बच्चे को जलपान के लिए कुछ पैसे दे दिये जायें। सब लोग मन्दिर परिसर एवं आसपास छान मारे परन्तु वह बालक नहीं मिला। तनिक विचार करें, यह अद्भुत लीला किसकी हो सकती है ?

सन्त श्री मुरलीधर महाराज द्वारा जब से मैंने इस घटना को सुना तब से मेरे मन में सदा यह भाव बना रहता था कि मैं भी खीर–चोरा गोपीनाथ भगवान का दर्शन करूँ। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की करुणा कृपा से मैंने वहाँ जाने का प्रोग्राम बनाया और 18 अप्रैल 2022 दिन सोमवार को उड़ीसा प्रान्त के बालेश्वर रेलवे स्टेशन पर उतरा। बाहर निकल कर मन्दिर के बारे में जानकारी करने लगा। वहाँ हिन्दी जानने वाले कम थे, सब उड़िया भाषा में बात करते थे। एक महाशय ने टूटी–फूटी हिन्दी भाषा में मन्दिर तक जाने का रास्ता बताया। बस द्वारा जब मैं वहाँ जा रहा था तो कण्डक्टर उड़िया भाषा में ही स्थान को बताकर पैसेंजर उतार व चढ़ा रहा था। मैं उसकी भाषा समझ नहीं पा रहा था। मैं बार–बार यही सोच रहा था कि जहाँ मुझे उतरना है कहीं वह स्थान निकल न जाये। बस में बैठे एक लड़के के पास मैं गया और अपनी परेशानी बतायी। टूटी–फूटी हिन्दी भाषा में उस लड़के ने कहा–बाबा आप चिन्ता न करें जहाँ आपको उतरना है वहीं मैं भी उतरूँगा। मैं आपको मन्दिर तक पहुँचाकर तब अपने घर जाऊँगा। बार–बार आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा का अनुभव मुझे होता रहा। उस लड़के ने मुझे मन्दिर तक पहुँचाया मैंने उसे हृदय से धन्यवाद दिया।

जैसे ही मैं मन्दिर परिसर में पहुँचा मन्दिर का कपाट बन्द हो गया। उस समय उड़ीसा में भयंकर गर्मी पड़ रही थी। मन्दिर के मुख्य गेट के सामने एक विशाल छायादार कदम्ब का वृक्ष है। उस वृक्ष की जड़ के चारों ओर गोलाकार बड़ा चबूतरा बना है। मैं छाया में चबूतरे पर बैठ कर मन्दिर के कपाट खुलने की प्रतीक्षा करने लगा। शाम सवा चार बजे मन्दिर का कपाट खुला और मैंने खीर–चोरा भगवान का विधिवत् दर्शन किया। आज वर्षों

से मेरी दर्शन–पिपासा शान्त हुई। भगवान के श्री विग्रह के बारे में जो कुछ जानकारी मुझे प्राप्त हुई, संक्षेप में उसका वर्णन इस प्रकार है–

त्रेता युग में भगवान श्री राम, जानकी जी एवं अपने अनुज लक्ष्मण जी के साथ वनवास काल में चित्रकूट पर्वत् पर विराजमान थे। भगवान श्रीराम एकाएक बड़े जोर से खिल–खिलाकर हँस पड़े। श्री जानकी जी ने उन्हें ऐसे हँसते हुए कभी नहीं देखा था। हँसी का कारण पूछा। पर्वत के नीचे की तरफ एक ग्वाला सिर पर पगड़ी बाँधे हुए, कन्धे पर कम्बल रखे हुए, हाथ में एक लकुटी लेकर गौवों को चराने के लिए उनके पीछे–पीछे जा रहा था। भगवान श्री राम ने उसी ग्वाले की तरफ संकेत करते हुए सीता जी से कहा–देवी! कालान्तर में मेरा भी स्वरूप कुछ ऐसा ही होगा। उस ग्वाले को देखकर मुझे उस स्वरूप की याद आ गई और मैं अपनी हँसी नहीं रोक पाया। सीता जी ने आग्रह किया भगवन! मैं आपका वह दिव्य स्वरूप देखना चाहती हूँ। सीता जी के आग्रह पर भगवान श्रीराम ने पत्थर की एक शिला को अपने बाणों की नोंक से तराश कर भगवान श्रीकृष्ण की एक मनमोहक मूर्ति बनाई और वहीं पर्वत पर स्थापित कर दिया। माता जानकी के कर कमलों द्वारा स्पर्श मात्र से वह मूर्ति सजीव भूत हो उठी। उस मूर्ति की पूजा स्वयं जानकी जी करने लगीं। कहा जाता है कि जब भगवान श्रीराम, लक्ष्मण, सीता के साथ वनवास के आगे की यात्रा पर चले गये, तब उस श्री विग्रह की पूजा का दायित्व ब्रह्माजी ने सँभाल लिया।

सन् 1258 ई. में तत्कालीन कलिंग नरेश लागुंला नरसिंह देव अपनी पुत्री का विवाह सम्पन्न करके सपरिवार चित्रकूट भ्रमण के लिए निकला। चित्रकूट पर्वत पर भगवान श्रीकृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति देखा। सभी ने उसकी पूजा–अर्चना की। सम्राट के मन में यह इच्छा प्रकट हुई कि क्यों न इस मनमोहक मूर्ति को अपने देश कलिंग ले जाया जाये ? उसी रात उस मूर्ति ने राजा को स्वप्न में कहा कि मैं मदन गोपाल हूँ। मुझे किसी रमणीय स्थान में स्थापित करो। राजा उस मूर्ति को लेकर जब अपने देश कलिंग वापस जाने लगा तो बालेश्वर जिले में उसकी पालकी रुकी और सब वहीं रात विश्राम करने लगे। राजा को फिर मूर्ति ने स्वप्न में कहा–यह बहुत ही रमणीय स्थान है। यहाँ ग्वाल–वालों की बस्ती है और सप्तशरा नदी का किनारा है। यहीं पर मुझे स्थापित करो। रमणीय होने के कारण आज वह स्थान रेमुणा के नाम से विख्यात है। रेमुणा स्थान बालेश्वर रेलवे स्टेशन से बारह किलोमीटर की दूरी पर है। रेमुणा के पूरब में सप्तशरा नदी बहती है जो अब बहुत सँकरी हो गई है। कहा जाता है कि वनवास के समय दक्षिण की तरफ जाते समय भगवान श्रीराम यहीं रुके थे। इसी स्थान में जानकी जी मासिक ऋतु स्राव के सातवें दिन स्रोत से निकली हुई नदी में स्नान करने की इच्छा व्यक्त की थीं। भगवान श्रीराम ने अपने सात वाणों से सात जल स्रोत

निकाले जो एक नदी का रूप ले लिए। इसी नदी में माता जानकी ने स्नान किया। तब से इस नदी का नाम सप्तशरा यानी सात वाणों वाली नदी पड़ा। इसी सप्तशरा नदी के पास रेमुणा नामक स्थान पर कलिंग नरेश ने भव्य मन्दिर बनवा कर उस श्री विग्रह को स्थापित कर दिया। उस मूर्ति की पूजा गोपीनाथ भगवान के नाम पर होने लगी।

कहा जाता है कि तत्कालीन पूर्वी बंगाल के एक कृष्ण भक्त संन्यासी सन्त माधवेन्द्र पुरी सन् 1445 ई. में दक्षिण भारत की यात्रा पर निकले। भ्रमण करते–करते वे रेमुणा स्थान पर पहुँचे और भगवान गोपीनाथ का दर्शन किये। यहाँ केवल मात्र खीर प्रसाद का ही भोग लगता है। माधवेन्द्र पुरी संन्यासी थे। वे किसी से कुछ माँगते नहीं थे। स्वयं अगर किसी ने कुछ दे दिया तो ग्रहण कर लेते थे। मन्दिर में जब उन्होंने खीर–प्रसाद देखा तो उसे पाने की मन में इच्छा हुई परन्तु न तो वे माँगे और न ही किसी ने दिया। वे बहुत भूखे थे। मन्दिर से कुछ दूरी पर वे उसी हालत में रात को सो गये। भगवान गोपीनाथ ने मन्दिर के मुख्य पुजारी को स्वप्न में आदेश दिया कि मेरा भक्त अमुक स्थान पर भूखा पड़ा है। भोग के लिए रखी हुई खीर को ले जाकर चुपके से मेरे भक्त को खिला दो। इसकी जानकारी अन्य पुजारियों को नहीं होनी चाहिए वरना सब विरोध करेंगे कि बिना भगवान को भोग लगाये खीर दूसरे को क्यों खिलाई गई ? मुख्य पुजारी ने ऐसा ही किया। सुबह हो हल्ला हुआ कि भोग की खीर चोरी हो गई। भगवान को भोग कैसे लगेगा। मुख्य पुजारी ने बात को गुप्त रखते हुए कहा कि अब तो खीर की चोरी हो गई है, दूसरी खीर बना कर भगवान को भोग लगाया जायेगा। इस प्रकरण के बाद से ही भगवान गोपीनाथ, खीर–चोरा के नाम से विश्व विख्यात हैं। आज भी वहाँ खीर का ही प्रसाद मिलता है। 25 रुपये, 40 रुपये एवं 70 रुपये में छोटे–बड़े मिट्टी के कुल्हड़ में खीर का प्रसाद मिलता है। मुझे भी उस दिव्य खीर प्रसाद को खाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसी खीर तो जीवन में मैंने कभी नहीं खाई थी।

भाई और बहनों, उड़ीसा की पूरी यात्रा के दरम्यान एवं उस मन्दिर के अन्दर बाहर हर समय आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की दिव्य कृपाओं का बार–बार अनुभव होता रहा जिसे मैं लेखनीबद्ध नहीं कर सकता। मैं आप लोगों से यही निवेदन करूँगा कि जब कभी संयोग बने तो खीर चोरा भगवान का दर्शन अवश्य करें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा–याचना करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

सादर जयगुरुदेव!

"ॐ रामलाल प्रभवे नमः"

लीला धारी की लीलाऐं

—जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003 एवं 011–35699425

गतॉंक से आगे—

त्रिकाल दर्शी, कलिकाल अवतारी, अन्तर्यामी गुरुदेव भगवान योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी दिव्य लेखनी से हमें अवगत करा रहे हैं कि—संस्वान्तः सुखाय हिमालय की गौरवमयी गोदी तथा सिद्ध समाज शिरोमणि पद को परित्यक्त करके सामान्य शरीर धारियों की भांति एवं सर्व साधारण के बीच विचरने की सद्गुरु देव श्री प्रभु राम लाल जी महाराज के ह्दय में लोक लालसा जैसी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। अपितु महा सिद्ध शिरोमणि, सिद्धों के सम्राट श्री प्रभु जी ने जब दिव्य वृष्टि द्वारा लोक–लोकान्तरों पर दृष्टिपात किया तो देखा कि यह सब ईश्वरावतारों की क्रीड़ा स्थल पर सर्वाधिक ऋषि सन्तानें हैं, वे कलिकाल से कुप्रभावित होकर श्रद्धा शून्य, योग वैराग्य आदि कल्याणकारी धर्माचरणों से विमुख होकर, नास्तिकता और भोगवाद आदि अधर्माचारों तथा विविध व्यथाओं में भटक रही हैं। अतः परम करुणार्णव रूप बना कर, उनके दुखों की निवृत्ति के लिए भूतल पर पदार्पण किया।

धराधाम के लक्ष्य स्वरूप योग मार्ग का प्रचार, प्रसार जन–जन तक पहुँचाया कि योग मार्ग से बढ़कर अन्य श्रेष्ठतम मार्ग कोई नहीं है। आनन्द कन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की कृपा धारा सदैव अपने संस्कारी बच्चों पर एवं चलते फिरते अपरिचित व्यक्तियों पर भी चमत्कारी ढंग से चलती रही है। अतः पाठकों से मेरा इतना निःसंकोच कहना है कि जो भी पवित्र ह्दय से प्रभुजी की इन कृपाओं का नित्य पाठ करेंगे वे नर–नारी, बालक या वृद्ध ही क्यों ना हों, उनकी योग–प्रवृति अवश्य बनेगी। उन पर कृपा सागर सद्गुरु देव महाप्रभु जी की अति शीघ्र कृपा दृष्टि होगी। वे सब प्रकार से कल्याण प्राप्त करेंगे।

लीलाऐं

मन को वश में करने का साधन—

श्री सिद्ध गुफा संवाई से योग योगेश्वर शरणागत वत्सल प्रभु श्री रामलाल जी

महाराज आकाश मार्ग द्वारा कुछ समय ब्रह्मपुरी रह कर ई. 1915 के हरिद्वार कुम्भ पर्व में पहुँचकर एकान्त में श्री महाप्रभु जी का ध्यान और समाधि लगाने लगे। वहाँ पर जब साधु समाज को आपका पता चला तो ज्ञान योग प्राप्त करने हेतु आपके पास आने लगे। वहाँ एक युवक साधु ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना कर मन को वश में करने का साधन पूछा। श्री प्रभु जी ने फरमाया कि जो साधक अपने मन को वश में करना चाहता है वह पहले योगाभ्यास द्वारा प्राण रोकने की साधना करे। मन और प्राणों का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मन तब रुकेगा, जब प्राण रुकेंगे। जिस भक्त को अपने गुरु चरणों में श्रद्धा और विश्वास हो वह एकान्त में योगाभ्यास द्वारा प्राणों की सिद्धि को प्राप्त करता है.....। भक्तो, सब के घट में एक ज्योत है, जिसको आत्मा कहते हैं। इस घट में आत्मा का प्रकाश विद्यमान है। जब हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो तो आत्मज्ञान होता है। यह ज्ञान केवल मानव तन में ही सम्भव है। अतः अपने योगी सद्‌गुरु को पाकर अपने जीवन को धन्य करने का प्रयत्न करो।

जिन खोजा तिन पाईया--अमृतसर से आए भाई तीर्थ राम, श्रीमती सुभद्रा आदि श्री गंगा जी तट पर स्नान-ध्यान कर कुम्भ मेले में श्री प्रभु राम लाल जी को ढूँढने लगे। तब लोगों ने बतलाया कि हर रोज प्रातः एक विख्यात योगी यहाँ सत्संग करते हैं और प्रेमियों का समूह दर्शन करने उमड़ आता है। इस पर सबने उस योगी महात्मा के दर्शन का विचार बनाया।

जब परिवार ने उन योगी महात्मा जी के दर्शन किए तो उनको वह योगी श्री रामलाल जैसे ही लगे। तो उन्होंने विनय भाव से प्रार्थना की कि हे योगीराज! हम दूर अमृतसर से अपने भाई रामलाल को, जो सात साल पहले घर त्याग कर चले गए थे, उनको ढूँढ-ढूँढ कर हार चुके हैं। कृपया आप हमारी सहायता करें।"

निर्मोही योगीराज जी को संसार कैसे बाँध सकता है। वह योगी राज जी महाराज तुरन्त अपने आसन से लोप हो गये। सब लोग पछताने लगे। यह व्याकुलता देख कर आशुतोष योगेश्वर जी प्रकट हो कर अपनी योग यात्रा द्वारा श्री महादेव भगवान सदा शिव को श्री सतुरु रूप में प्राप्त करने का वृतान्त सुनाते हुए कहा--उनकी (सदा शिव भगवान की) आज्ञा अनुसार, हिमालय छोड़ कर यहाँ कुम्भ मेले में रामलाल आपके सम्मुख बैठा है।

जब श्री तीर्थ राम ने श्री प्रभुजी से यह रहस्य जाना तो उसे प्रेम से अपने गले

लगा लिया। श्रीमती सुभद्रा जी ने श्री प्रभु जी के चरणों को अश्रुओं से नहला दिया। सारी जनता ने जय जय कार की। देवों ने दिव्य पुष्प वर्षा की। घर वालों की आर्त पुकार सुनकर श्री प्रभु जी कुम्भ पर्व स्नान बाद अमृतसर कटरा भाई सन्त सिंह पधारे।

जान में जान आई—सर्व समर्थ्य श्री प्रभु जी के जटाधारी तेजोमय दिव्य स्वरूप को देख कर अमृतसर निवासी प्रभावित हो गये। पड़ोस में रहने वाली एक देवी (चाची) ने दर्शन कर वार्तालाप में पूछा ''आपने जटाऐं ही बढ़ाई हैं या कुछ प्राप्त भी कर आए हो,'' श्री प्रभु जी ने कहा—''चाची! सब कुछ प्राप्त कर लिया है.....।'' चाची बोली ''कुछ तो दिखाओ......।'' इतना सुन कर श्री प्रभु जी चुपचाप घर की ओर चले आए। तदुपरान्त उस चाची को अपने मकान में सर्प ही सर्प दिखाई देने लगे। वह डर के मारे, आपको कुछ दूरी पर मुस्कराते देख, जोर–जोर से आवाजें लगाने लगीं। आपने कहा—''चाची! ये सर्प विषधर नहीं हैं। आपको कुछ नहीं कहेंगे।'' तब चाची को इस प्रकार से घबराई देख कर श्री प्रभु जी ने सर्पों को आज्ञा दी, ''जाओ भाई जाओ! हमारी चाची डर रही है।'' इतना सुनते ही सर्प लुप्त हो गए। तब चाची की जान में जान आई।

श्री प्रभु जी गृहस्थी रूप में—योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अमृत आने के बाद अपना जटाजूट वेश त्याग कर साधारण पंडित वेश में रहना प्रारम्भ कर दिया। मगर उनके प्रखर तेज से आकर्षित होकर कितने ही संस्कारी जीव श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ आया करते थे। इस प्रकार पंडित वेश में छिपे होने पर भी श्री प्रभु जी के चरण कमलों की महिमा नगर भर में फैलती जाती थी।

ब्र. गोपालानन्द जी को प्रभु दर्शन—

कुशाग्र बुद्धि के श्री रामगोपाल जी अल्पआयु में ही आयुर्वेद के अच्छे कुशल वैद्य बन गए थे। चिकित्साकार्य के साथ–साथ अनेक महात्माओं के दर्शन किए। इन्हीं महात्माओं से एक हठयोगी महात्मा मिले, जो रात्रि बेला में शीर्षासन लगाते तथा प्राणायाम से कई फुट ऊपर तक पहुँच जाते। इस दृश्य को श्री राम गोपाल ने छुप कर देखा तो उन्हें गुरू बनाने का निश्चय किया। इस शुभ विचार से महात्मा जी ध्यान मग्न हो गए। पश्चात् बोले—''मैं तुम्हारा गुरू नहीं हूँ। कुछ समय के अन्तराल में तुम्हें पूर्ण गुरु की प्राप्ति होगी और उन्हीं के द्वारा तुम कल्याण को प्राप्त होगे।'' इस आशीर्वादात्मिक

भविष्यवाणी से गोपाल जी अपने शुभाशुभ की प्रतीक्षा करने लगे। फिर वे अपने व्यवसाय के लिए मुरादाबाद जा पहुँचे और वहाँ एक उच्च कोटि के महात्मा से दीक्षा ले ली। परन्तु ये महात्मा जी कठोर वाणी के रहे अतः ब्रह्मचारी जी उनसे भयभीत रहते थे। वह किसी करुणार्णव योगीराज की खोज में रहते रहे।

सच्ची लगन में ईश्वर का वास रहता है। ब्रह्मचारी जी किसी कार्यवश सहारनपुर (यू.पी.) गए हुए थे। वहाँ पर सत्यगुरुदेव योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी भक्तों को निहाल करने पधारे हुए थे। ब्र. जी ने उनकी कीर्ति सुनी तो दर्शन करने चले गए। उस दिन गुरू पूर्णिमा का दिन था। भक्त मण्डली ने श्री प्रभु जी के लिए मोतिया, चमेली, गुलाब आदि सुगन्धित पुष्पों का सिंहासन तैयार कर रेशमी वस्त्रों–पुष्पों आदि से भव्य सजाया था। श्री प्रभु जी को दही–दूध–गंगाजल से स्नान कराया जा रहा था। दिव्य पीताम्बर–आभूषण आदि पहना कर, वेद विधि से पूजन किया–आरती उतारी गई। डॉ. रामगोपाल यह सब तमाशा देख रहे थे। सोचा–"यह सब ब्राह्मणों की पोपलीला है।" मन में अविश्वास की भावना लेकर लौट चले। थोड़ी दूर जाने पर उनके एक मित्र मिल गए जो श्री प्रभु जी की प्रभुता से भली भांति परिचित थे। वे राम गोपाल की सब बात सुन कर, समझ गए। वे डॉ. साहिब को यथार्थ समझा कर, एक उद्यान में बैठाकर श्री महाप्रभु के चरण–कमलों में आए और प्रार्थना की कि प्रभो! डॉ. रामगोपाल आपके श्री चरणों में बड़ी आशा से आए थे और निराश लौटे जा रहे हैं। आप उन्हें अपने चरण कमलों में अवलम्बन देकर कृतार्थ करें। सत्संगी का दीन वचन सुन कर श्री महाप्रभु जी ने कहा–"उन्हें बुला लाओ।" सत्संगी मित्र उमंग से दौड़े गए और उन्हें बुला लाए। श्री प्रभु जी ने हँसते हुए रामगोपाल से कहा–"भाई यहाँ तुम्हारी श्रद्धा कैसे होगी। तुम किसी ऐसे योगीराज महात्मा को ढूँढो जिस के सिर पर लम्बी जटाएँ हों। चेहरे पर विभूति हो और दम्भ से रहित हो।" अपने मन के भावों को श्री प्रभु जी के श्री मुख से व्यक्त होते देख कर डॉ. रामगोपाल के हृदय में श्रद्धा का समुद्र उमड़ पड़ा। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "प्रभु! मैं आपके वास्तविक रूप को नहीं समझ सका। ऊपरी चीजों को देखकर मेरा मन अपने दम्भ में बह गया। मुझे क्षमा करें, मैं आपका एक दीन बालक हूँ।"

अहैतुकी कृपा–उसकी दीन वाणी को सुन कर दीनबन्धु श्री प्रभु जी का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने मिट्टी की एक डेली उठाकर दी और कहा–"इसे खा जाओ

और एकान्त में बैठ कर अपने गुरु के बताए मन्त्र का जप व ध्यान करो"। डॉ. राम गोपाल वह डेली मुँह में डाल कर ध्यान में बैठ गए। उसका हृदय आनन्द से भर गया, कृत कृत हो कर डॉ. जी ने श्री प्रभु जी के श्री चरणों में प्रणाम किया और अपने गुरु के स्थान लौट पड़े। उनके गुरुदेव ने अपनी यौगिक शक्ति से पहले ही जान लिया था। वह डॉ. जी को देखते ही बिगड़ उठे। उन्होंने रोषपूर्वक कहा–तुम्हें गुरु तो परिपूर्ण मिल गए हैं। वह पूर्ण सिद्ध योगिराज हैं, किन्तु यहाँ का भी तो कुछ प्रसाद लेता जा। आज से शेष जीवन में–

चार शाप

(1) तू जीवन भर रोगी रहेगा।

(2) तेरी औषधियों में विष हो जाएगा और चिकित्सा कार्य में विफल रहेगा।

(3) तू जीवन भर दरिद्र रहेगा।

(4) तू अन्त में सद्गति को नहीं पा सकेगा।

एक साथ चार शाप मिलने से डॉ. राम गोपाल का हृदय काँप उठा। उन्हें तीव्र ज्वर हो आया। जब ज्वर का वेग कुछ कम हुआ तो डॉ. साहिब ने श्री प्रभु जी को शापों की कथा विस्तार से लिख दी। भव भयहारी, भक्त हितकारी श्री प्रभु जी ने लौटती डाक से पत्र लिखा कि चि. नेपाल वाले देवों के देव महादेव–सदा शिव लम्बा चिमटा लिए सदैव तुम्हारे साथ हैं। महात्मा ने जो तुम्हें शाप दिये हैं, उनका भुगतान उसी दिन दोपहर 12 बजे से रात आठ बजे तक कर दिया गया है। अब तुम स्वस्थ होगे और मेरा पत्र पाने के बाद उन शापों का विपरीत फल होगा।

अब शेष जीवन में–

चारों वरदान–

(1) तुम जीवन भर स्वस्थ रहोगे।

(2) तुम्हारी औषधियों में अमृत का वास होगा। अपने चिकित्सा कार्य में तुम सफल होगे।

(3) तुम चाहोगे तो इससे बड़े धनिक बन जाओगे।

(4) तुम्हें अन्त में सद्गति प्राप्त होगी।

प्राणीमात्र को अभय दान देने वाले श्री प्रभु जी का पत्र बार–बार पढ़ कर डॉ. राम गोपाल गद्गद् हो गए। वह सोचने लगे कि श्री प्रभु जी ने बड़े धनिक होने की

बात लिखी है, मैं कैसे धनिक बनूँगा ? अतः उन्होंने ध्यान में श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि हे प्रभो मैं धनवान कैसे बनूँगा ? श्री प्रभु जी ने आयुर्वेद का यौगिक मिश्रण नोट करा कर आज्ञा दी तुम्हारा यह योग "अमृत-धारा और सुधा-सिन्धू" संसार में विख्यात होकर चलेगा। तुम लाखों के मालिक बन जाओगे। श्री प्रभु जी की प्रेरणा से एक आदमी धनराशि लेकर आया। उसने साझीदार बनने की इच्छा प्रकट की।

डॉ. साहिब ने सोचा कि निर्धन अथवा धनवान बनने का वास्तविक परिणाम क्या होगा। वे ध्यान में बैठ गए और श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि मुझे बतला दीजिए कि कौन सा मार्ग शुभ होगा ? श्री प्रभु जी ने पहले धन का परिणाम दिखाया-लाखों की सम्पत्ति-स्त्री-पुत्र और मन में अधिक धन की लोलुपता का दर्शन कराया परिणामस्वरूप सर्प योनि को प्राप्त होते दिखलाया। फिर निर्धन जीवन दिखलाया कि वह एक साधु है। संकीर्तन से हजारों की भीड़ को शक्ति-पात करा रहा है। सब कृतार्थ हो रहे हैं। झंझावात चल रहा है, ऊपर से ओले बरस रहे हैं, किन्तु कोई दुख नहीं हो रहा है। आनन्द विभोर हो कर श्री प्रभु जी के चरण कमलों में स्थान मिल गया है। उनके अन्तःकरण में वैराग्य का सागर उमड़ पड़ा और वह अपने को रोक न सके। औषधियों को बान्धकर, आनन्द कन्द श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ अमृतसर पहुँच गए।

श्री प्रभुजी का आशीर्वाद-रामगोपाल को परम विरक्त भाव से आया जान कर श्री प्रभुजी ने अपनी अहेतुकी करुणा की वर्षा की। बोले-बेटा, तुम्हारा कल्याण होगा तुम लाखों जीवों के कल्याण का कारण बनोगे............।

डॉ. साहिब के पिता लाला गोविन्द राम भी इस भावना से पिघल कर स्वयं पुत्र हेतु, ब्रह्मचारी वस्त्र लाकर आशीर्वाद दिया और श्री प्रभु जी से पुत्र को दीक्षा देने का आग्रह किया।

(क्रमशः)

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

ब्राह्मण द्वारा प्रेत उद्धार

प्रेषक—कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर।

साधक साथियों सद्गुरु की कृपा, सद्ग्रंथ जीव के कल्याण के हेतु होते हैं। सद्ग्रंथों का स्वाध्याय भी सद्मार्ग की ओर ले जाने वाला होता है। हमारा भारतवर्ष इसी से समृद्ध और सम्पन्न रहा है। क्योंकि यहाँ दोनों उपलब्ध रहे हैं। सद्ग्रंथों की कथाऐं जीव के लिए प्रेरक का कार्य करती है। बार-बार के स्वाध्याय से चित्त पर उसका प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ता है। जैसे रगड़ से हथियार तेज होता है। गुरु प्रदत्त मंत्र से आत्मोत्थान होता है। अब जीव पर निर्भर करता है कि वह आत्मोत्थान के लिए कितना जिज्ञासु वृत्ति से साधन करता है। ऐसी ही कथा पद्म पुराण में आया है। जो हमें सद्मार्ग की ओर प्रेरित करती है। पुराण में यमराज और ब्राह्मण के संवाद के रूप में कथा है।

धन शर्मा नामक एक ब्राह्मणदेव जो परम तपस्वी, धर्मनिष्ठ जंगल में समाधि आदि लेने हेतु गये थे। वहाँ उन्होंने उस महान् जंगल में कुछ अजीब रूप वाले मनुष्य को देखकर पहले तो भयभीत हुए। लेकिन तपोनिष्ट को देखकर वे शान्त हो गये। उनका दाँत काला, बाल विचित्र प्रकार का डरावना, पेट सूजा तथा हाथ पैर भी विचित्र थे। ब्राह्मण ने समझ लिया ये प्रेत योनि के जीव हैं। ब्राह्मण को देखकर प्रेतों को मानो शान्ति मिल रही थी। धन शर्मा ने उन प्रेतों को देखकर बोले—तुम लोग कौन हो और क्यों तुम्हारी ऐसी दुर्गति हुई है। तुम लोगों को देखकर मुझे भी भय हो रहा है। मेरे ऊपर दया करो मैं तो भगवान विष्णु का दास हूँ। मेरी रक्षा करने से भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे। भगवान विष्णु ब्राह्मणों के प्रति दयालु हैं। मुझ पर दया करने से वे तुम सब के ऊपर भी सन्तुष्ट होंगे। श्री विष्णु जीवों का कल्याण करने वाले हैं। चतुर्भुज रूपधारी, शंख, चक्र, पद्म, गदा धारण करने वाले हैं। पीताम्बरधारी भगवान का स्मरण करने मात्र से सब पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। वे अविनाशी परमात्मा प्रेतों का भी उद्धार करते हैं। यदि कोई उनके नाम का स्मरण और सत्संग करता है। तो वे अकारण करुणा वरुणालय दयार्द्र हो जाते हैं। ब्राह्मण के साथ उनका सत्संग काफी देर तक

चला। भगवान विष्णु का नाम सुनते उनका भाव पवित्र हो गया। वे दया और उदारता के वशीभूत हो गये। सत्संग के प्रभाव से यह तो होना ही था। क्योंकि एक तो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण दूसरे काफी देर तक भगवान की कीर्ति का बखान कर रहे थे। जिसका प्रभाव उन पर तो पड़ना ही था। दूसरे धन शर्मा ब्राह्मण के द्वारा उनका उद्धार भी होना था। इसलिए ऐसी वृत्ति बन गयी। ब्राह्मण देव ने उनके बारे में पूछा–तुम सबकी दुर्गति का कारण क्या है ? प्रेतों ने कहा–'ब्राह्मण देव भगवान हरि का नाम सुनने से हमारा भाव बदल गया। वैष्णव पुरुष का सानिध्य और उनके साथ सत्संग का लाभ परमात्मा से संयोग कराने वाला होता है।'

दर्शनेनैव ते विप्र नाम श्रवणतो हरेः।
भावमन्यमनुप्राप्ता वयं जगता दयालवः।।
अपाकरोति दुरितं श्रेयः संयोजयत्यपि।
यशो विस्तारयत्याशु ननं वैष्णव संगम।।

वैष्णव की कृपा यश का भी विस्तार करता है। हे ब्राह्मण देव हम सबका परिचय सुनो। यह पहला **'कृतघ्न'** नाम का प्रेत है। यह अपने जीवन में सदैव कृतघ्नता ही किया है। कृतघ्नता सबसे बड़ा पाप है। उसी के परिणाम स्वरूप यह उस दुर्गति को प्राप्त कर रहा है। यह पूर्वजन्म में **'सुदास'** नामक द्रोही मनुष्य था। लोगों से सदा कृतघ्नता करता रहा है। इसलिए उस अवस्था को प्राप्त हुआ है। जो व्यक्ति पापी, धूर्त तथा गुरु और स्वामी का अहित करते हैं। ऐसा मनुष्य तो प्रायश्चित करके पाप से मुक्त नहीं होता है–

अतिपापिनि धूर्तेच गुरुस्वाम्यहितेऽपि वा।
निष्कृतिर्विद्यते विप्र कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।

दूसरा प्रेत ने कभी भी देवताओं का पूजन, भजन तथा समर्पण किये ही अन्न खाता था। कभी गुरु और ब्राह्मण को दान आदि नहीं किया इसलिए इसका नाम **'विदैवत'** हुआ। यह पूर्व जन्म में हरिवीर नामक राजा था। दस हजार गाँवों पर इसका अधिकार था। यह क्रोध, अहंकार और नास्तिक होने के कारण गुरु और ब्राह्मणों का कभी सम्मान नहीं किया। बिना पंचयज्ञ के भोजन करता तथा ब्राह्मणों की निन्दा करता रहा है। उसी पाप कर्म के कारण यह नरक के कष्ट को भोगते हुए उस समय **''विदैवत''** नामक प्रेत हुआ। मैं स्वयं अवैशाख नामक प्रेत हूँ। पूर्वजन्म में मैं भी ब्राह्मण

था। मध्य देश में मेरा जन्म हुआ था। मेरा नाम गौतम और गोत्र भी वही था। वासपुर नामक गाँव का निवासी था। मैंने वैशाख मास में भगवान माधव की प्रसन्नता के उद्देश्य से कभी स्नान नहीं किया। दान, हवन नहीं किया। वैशाख मास में होने वाले धार्मिक कृत्यों को नहीं किया। ब्राह्मणों आदि को दान धर्म से सन्तुष्ट नहीं किया। पूजा-पाठ व्रत आदि के द्वारा होने वाले पुण्य नहीं किया। इससे एक ब्राह्मण के सारे वैदिक कार्य समाप्त हो गये। इसी कारण मैं अवैशाख नामक प्रेत होकर विचर रहा हूँ।

हम सब का प्रेत योनि में पड़ने का यही मूल कारण है। मैंने तुमसे सत्य बात बता दिया है। अब तुम ही हम लोगों का उद्धार कर सकते हो। हम सब तुमसे हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं। हे ब्राह्मण पुण्यात्मा साधु पुरुष तीर्थों से भी बढ़कर होते हैं। जो नारकियों को तार देते हैं। जो मनुष्य गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करता है तथा जो मात्र पुण्यात्माओं के साथ सत्संग करता है तो सत्संग करने वाला निश्चय ही कल्याण का भागी बन जाता है।

गंगादिसर्वतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा।
यः करोति सतां संग तयोः सत्संगमो वरः॥

प्रेत की बात सुनकर ब्राह्मण को दया आ गयी। उसे मालूम हो गया कि गौतम मेरे ही पिता हैं। जो नरक में पड़कर दुःख पा रहे हैं। धन शर्मा को प्रेत रूपी पिता की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। अपनी ही निन्दा करते हुए धन शर्मा ने कहा कि-आप का वह पुत्र मैं ही हूँ। मैं आपके काम नहीं आ सका। जिसके कारण मुझे आज बहुत कष्ट हो रहा है। जो पुत्र अपने पिता का उद्धार नहीं कर सकता है। वह कभी भी पवित्र नहीं हो सकता है। धर्म की दृष्टि से पिता और माता श्रेष्ठ गुरु होते हैं। पिता तो सर्वश्रेष्ठ होते हैं। पिता जी बताइये मैं आपके लिए क्या करूँ ? जिससे आपको सद्गति प्राप्त हो। मैं आप की आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा।

प्रेत ने कहा-बेटा घर जाओ पवित्र यमुना जी में स्नान करो वैशाख की पूर्णिमा को तुम विधानपूर्वक उत्तम गति प्रदान करने वाली देवता और पितरों के पूजन के निमित्त भक्ति पूर्वक तिल मिश्रित जल, जल का घड़ा, अन्न और फलदान करना। श्रद्धापूर्वक पितरों की तिथि पर किया गया दान धर्म पितरों को हजारों वर्षों तक आनन्द प्रदान करने वाला होता है। जो वैशाख की पूर्णिमा को दस ब्राह्मणों को खीर खिलाता है। वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जल से भरे सात घड़े दान करता है। वह अपने सात

पीढ़ियों को तार देता है। बेटा–त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को श्रद्धा के साथ हम लोगों को उद्धार हेतु श्री माधव का पूजन करके जप दान होम हम लोगों के निमित्त अर्पित करो। जिससे मेरे साथ इस सब प्रेतों का भी कल्याण हो जाये।

ब्राह्मण धन शर्मा ने पिता के बताये अनुसार उनका धार्मिक विधि से अनुष्ठान करके उसको उन प्रेतों को समर्पित किया। प्रेम कर्म से मुक्ति करने के फलस्वरूप तीनों प्रेतों को सम्पूर्ण फल प्राप्त किया। वे प्रेत योनि से मुक्त हो गये। आनन्द मग्न हो देवताओं से प्रेषित विमान पर बैठकर तत्क्षण स्वर्गलोक पधार गये। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ धन शर्मा श्रुति, स्मृति और पुराणों के ज्ञाता थे। चिरकाल तक उत्तम भोग को भोगते हुए। अन्त में उत्तम लोक को प्राप्त किया।

साधक साथियों यह कथा हमें यह शिक्षा देती है कि हम साधक को शास्त्रानुसार अपने समस्त कार्यों को करना ही चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से शास्त्र सम्मत कार्यों को करने हेतु अर्जुन को उपदेश दिया था। यह उपदेश सार्वभौम है। अतः पालन करते हुए गृहस्थाश्रम में रहकर परमानन्द प्राप्त किया जा सकता है–

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि भवाप्नोति न सुखं न परा गतिम्।।16/23

इसलिए कहा–

तस्माच्छात्रं प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वाशास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16/24

पुरुष और प्रकृति : योग की दृष्टि में

(श्री सुरेन्द्रबहादुर सिंह)

योगशास्त्र का एक मात्र लक्ष्य है योग–साधन द्वारा बद्ध पुरुष को प्रकृति के बन्धन से मुक्त कराकर कैवल्य प्रदान कराना। प्रकृति ही एक मात्र पुरुष का बन्धन है। जिस क्रम से यह पुरुष को बांधती है उसके ठीक उल्टे क्रम से यह पुरुष को छोड़ती है। अतः प्रकृति का स्वरूप ज्ञान योग के पथिक के लिए आवश्यक हो जाता है। योग–साधक के क्रमिक उत्थान का तात्पर्य उसका प्रकृति के स्वरूप का क्रमशः ज्ञान है। अतः प्रकृति स्वरूप विवेचन प्रस्तुत योग परक लेख में असमीचीन न होगा।

यहाँ यह बता देना असंगत न होगा कि महर्षि पतंजलि के योगशास्त्र का सैद्धांतिक आधार सांख्यप्रदर्शन ही है। सांख्यदर्शन के प्रकृति–पुरुष सिद्धान्त को योग–शास्त्र ज्यों का त्यों स्वीकार करता है। इन दोनों दर्शनों में एकमात्र अन्तर यही है कि सांख्य–दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता जबकि योग–दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। किन्तु योग का ईश्वर अन्य दर्शनों के ईश्वर की भांति सृष्टि का रचयिता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता न होकर एक प्रकृति–निरपेक्ष सत्ता है जो पूर्व के गुरुओं का भी गुरु है तथा काल की सीमा से परे एक पुरुष विशेष है जो ईश्वर–प्रणिधान करने वाले साधकों का सहायक है। अतः कुछ विद्वानों का मत है कि शुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से योगदर्शन में ईश्वर का स्थान सिद्धांतपरक नहीं अपितु साधना परक है।

सांख्यदर्शन के अनुसार सारे जगत् का अथवा जागतिक पदार्थों का मूल कारण प्रकृति है। प्रकृति मूलतत्व है तथा जगत् के सभी पदार्थ उसी की विकृति अथवा उसके विकार हैं। अर्थात् यह जगत् अपने दृश्य रूप में आने से पूर्व अव्यक्त प्रकृति में व्याप्त था। सांख्य–दर्शन द्वारा प्रतिपादित सृष्टि का उत्पत्ति का विवरण उसके प्रसिद्ध सिद्धान्त सत्कार्यवाद पर आधारित है। सत्कार्यवाद को परिणामवाद भी कहते हैं। इसके अनुसार कोई भी कार्य पहले से ही अपने कारण में विद्यमान रहता है और कारण की क्रिया द्वारा यह उत्पन्न नहीं होता है।

इसके विपरीत न्याय और बौद्धदर्शन क्रमशः आरम्भवाद तथा असत्कार्यवाद को मानते हैं नैयायिकों के अनुसार जब कोई कार्य उत्पन्न होता है तो वह एक नया आरम्भ है। वह

पहले से ही अपने कारण में विद्यमान नहीं रहता। बौद्धों का कहना है कि कारण के नष्ट होने पर ही कार्य का प्रादुर्भाव होता है, जैसे बीज नष्ट होने पर अंकुर का प्रादुर्भाव होता है।

सांख्य दर्शन ने अपने मत की पुष्टि एवं विरोधी मतों का खण्डन सांख्यकारिका में इस प्रकार किया है–

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।

अर्थात् कारण की क्रिया के पूर्व भी कार्य की सत्ता अव्यक्त रूप से रहती है, क्योंकि यदि वह असत् होता तो उसे कोई भी सत् नहीं कर सकता। यदि कार्य को कारण में असत् मान लिया जाये तो कार्य की असत्ता सभी कारणों के समान होने से सभी कारणों से सभी कार्य उत्पन्न होने लगेंगे, किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि संसार में जो कार्य जिस कारण में है वह कार्य उसी कारण से उत्पन्न होता है। इसीलिए दही चाहने वाला दूध का ग्रहण करता है न कि जल का। तेल का चाहने वाला तिल का ग्रहण करता है न कि रेत का। अतः यह स्पष्ट है कि कार्य अपने कारण में सत् है।

प्रकृति सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से मिलकर बनी है। सृष्टि से पूर्व प्रकृति सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था के कारण अव्यक्त रहती है। प्रकृति की अवस्था को प्रधान, गुणक्षोभिणी, बहुधानक तथा प्रसव–धर्मिणी नामों से भी अभिहित किया जाता है इसे सृष्टि के सभी पदार्थों का मूल होने के कारण प्रधान, गुणों की साम्यावस्था को स्वयं भंग करने के कारण गुणक्षोभिणी तीनों गुणों के रूप में विभिन्न पदार्थों के वैचित्र्य की बीज होने के कारण बहुधानक तथा समस्त पदार्थों की जननी होने के कारण प्रसवधर्मिणी कहा जाता है। प्रलय की अवस्था में भी सत्व, रज तथा तमोगुण अपने–अपने केन्द्र में समान परिमाण वाले होकर स्थित होने के कारण साम्यावस्था में रहते हैं। इन गुणों की साम्यावस्था का भंग होना ही सृष्टि है। सृष्टि के समय यही तीनों महदादि कार्यों को उत्पन्न करते हैं। उस समय एक गुण की प्रधानता रहती है तथा शेष दो गुण गौण रहते हैं। बिना गुणों के विषम परिणाम के सृष्टि की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। सत्व, रज तथा तमोगुण क्रमशः सुख, दुःख तथा विषादात्मक होते हैं। सुख, दुःख तथा मोह ही इनका स्वरूप है। इनका कार्य क्रमशः प्रकाश करना, प्रवृत्त करना तथा नियमन करना अथवा रोकना है। इन तीनों गुणों में से प्रत्येक अन्य दो गुणों को दबाकर अपनी वृत्ति को प्राप्त करता है। इसलिए ये अभिभव वृत्ति को प्राप्त करता है। इसलिए ये अभिभव वृत्ति वाले हैं। प्रत्येक गुण अन्य दो गुणों का सहारा लेकर ही अपने कार्य में प्रवृत्त होता है, अतः ये परस्पराश्रय वृत्तिवाले भी हैं। संसार के सभी कार्य त्रिगुणात्मक हैं जिनके जनक यही तीनों गुण हैं। इन तीनों के लक्षण

इस प्रकार हैं—

सत्त्वं लघु प्रकाशकम्– इष्टमुपष्टम्भकं चंचल रज:।

गुरु वरणकमेव तम: प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति:।।

सत्त्वगुण हल्का तथा प्रकाशक है। सत्त्व गुण का आधिक्य होने से शरीर में हल्केपन की अनुभूति होती है तथा इन्द्रियाँ अपने विषयों का ज्ञान शीघ्र प्राप्त करने में समर्थ होती हैं। इसलिए लघुत्व तथा प्रकाशत्व को सतोगुण का लक्षण माना गया है। रजोगुण प्रवृत्तिकारक तथा चंचल अर्थात् सक्रिय है। रजोगुण के कारण कार्य करने की प्रवृत्ति होती है तथा शरीर और मन सक्रिय बने रहते हैं। इसलिए प्रवर्तकत्व तथा सक्रियता को रजोगुण का लक्षण माना गया है। तमोगुण भारी तथा प्रतिबन्धक होता है। तमोगुण के कारण शरीर तथा इन्द्रियों में भारीपन रहता है तथा इन्द्रियों द्वारा विषयों के ज्ञान में रुकावट पैदा होती है। इसलिए गुरुत्व तथा प्रतिबन्धकत्व को तमोगुण का लक्षण माना गया है।

पुरुष तीनों गुणों से अतीत नित्य चेतन सत्ता है। वह साक्षी, दृष्टा, कैवल्यरूप, मध्यस्थ, उदासीन, विवेकी, अप्रसवधर्मी तथा अकर्त्ता है। पुरुष का प्रकृति के साथ संयोग होना ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। जब प्रकृति में पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो रजोगुण के चंचल हो जाने के कारण प्रकृति की साम्यावस्था भंग हो जाती है। प्रकृति तथा पुरुष के बिम्बप्रतिबिम्ब भाव के कारण जड़ प्रकृति में भी चेतन की प्रतीति हो उठती है। बस यहीं से सृष्टि का क्रम आरम्भ हो जाता है। चेतन तत्त्व पुरुष के सामने जिस समय जड़ बुद्धि उपस्थित हुई तो चेतन की झलक उसमें पड़ते ही वह चेतन हो उठी और उसमें 'मैं' की प्रतीति होने लगी। फिर बुद्धि ने उस चेतनता को पाकर प्रत्युपकार के रूप में अपना जड़ धर्म आत्मा अथवा पुरुष को दे दिया जिसके फलस्वरूप नित्य निर्विकारी पुरुष अपने को विकारी जानने लगा और उसमें कर्तृत्व अर्थात् 'मैं कर्त्ता हूँ' की प्रतीति होने लगी। इसी को जड़–चेतन की गाँठ कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि अन्तत: यह संयोग होता ही क्यों है ? इसका उत्तर सांख्य दर्शन इस प्रकार देता है—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।

पंग्वन्ध वदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत: सर्ग:।।

पुरुष और प्रकृति का संयोग पुरुष के दर्शन तथा कैवल्य के लिए होता है। प्रकृति भोग्या है, अत: उसके भोगात्मक दर्शन के लिए भोक्ता पुरुष की आवश्यकता है। प्रकृति के साथ संयोग होने पर उसके दु:ख आदि को अपने में मानकर दु:खी पुरुष की कैवल्य की आकांक्षा करता है और प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान रूप कैवल्य मुक्ति बिना प्रकृति के हो नहीं सकती, इसलिए पुरुष को प्रकृति की आवश्यकता है। जैसे बिना लंगड़े के अन्धे को

रास्ता नहीं दिखाई पड़ सकता। इसलिए अन्धे को लंगड़े की आवश्यकता है और बिना अन्धे के रास्ता चलना कठिन होने के कारण लंगड़े को अंधे की आवश्यकता है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष का संयोग हुए बिना दोनों का कार्य सध नहीं सकता। भोग और अपवर्ग रूप कार्य बिना सृष्टि के हो नहीं सकते और सृष्टि की उत्पत्ति बिना पुरुष प्रकृति संयोग के हो नहीं सकती। अतः पुरुष–प्रकृति का संयोग सृष्टि की उत्पत्ति के द्वारा भोग और अपवर्ग की प्राप्ति के लिए ही होता है।

अव्यक्त प्रकृति रूप मूल कारण से सर्वप्रथम महत्तत्व यानी बुद्धि की उत्पत्ति होती है। बुद्धि से अहंकार तथा अहंकार से ग्यारह इन्द्रियों एवं पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं सहित सोलह पदार्थों का समूह उत्पन्न होता है। इन ग्यारह इन्द्रियों में मन भी एक इन्द्रिय के रूप में सम्मिलित है। पाँच सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द तन्मात्रा से शब्द गुणवाला आकाश उत्पन्न होता है। शब्द तन्मात्रा सहित स्पर्श तन्मात्रा से वायु की उत्पत्ति होती है जिसमें शब्द तथा स्पर्श के रहते हैं। शब्द और स्पर्श तन्मात्राओं के सहित रूप तन्मात्रा से शब्द–स्पर्श रूप गुण वाला तेज उत्पन्न होता है। शब्द स्पर्श और रूप तन्मात्रा सहित रस तन्मात्रा से शब्द–स्पर्श–रस गुण वाला जल उत्पन्न होता है और शब्द–स्पर्श–रूप–रस तन्मात्राओं सहित गन्ध तन्मात्रा से शब्द–स्पर्श–रस–गन्ध वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।

सृष्टिक्रम में प्रथम तत्व महत्तत्व अथवा बुद्धितत्त्व है बुद्धितत्त्व के आठ धर्म हैं जिनमें चार सात्त्विक तथा चार तामस हैं। सात्त्विक धर्म इस प्रकार है–(1) धर्म, (2) ज्ञान, (3) वैराग्य तथा (4) ऐश्वर्य।

धर्म–उसे कहते हैं जिससे इहलोक तथा परलौकिक सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ज्ञान–प्रकृति पुरुष के भेदज्ञान को कहते हैं।

वैराग्य–वैराग्य चार प्रकार है–यतमान व्यतिरेक, एकेन्द्रिय तथा वशीकार। इनसे ऐहिक तथा पारलौकिक सभी प्रकार के विषयों से चित्त हट जाता है।

ऐश्वर्य–बुद्धि का वह सात्त्विक धर्म है जिससे अणिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियों का आविर्भाव होता है। बुद्धितत्त्व के चार तामस धर्म हैं–अधर्म अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य।

'जो कुछ हूँ वह मैं ही हूँ'–इस प्रकार का जो अभिमान प्राणिमात्र को होता है वह अहंकार का लक्षण है। सात्त्विक अहंकार से प्रकाश रूप इन्द्रियाँ तथा तामस अहंकार से जड़ पंच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियों पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन की उत्पत्ति सात्त्विक अहंकार से होती है। मन का कार्य है संकल्प–विकल्प करना, ज्ञानेन्द्रियों का कार्य

है बाह्य विषयों को ग्रहण करना तथा कर्मेन्द्रियों का कार्य है बाह्य कर्मों को करना। बुद्धि, अहंकार और मन–इन तीनों का कार्य प्राण आदि वायुओं के द्वारा शरीर को धारण करना है।

शरीर तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें विशेष भी कहा जाता है–(1) सूक्ष्म अथवा लिंग–शरीर, (2) स्थूल शरीर तथा (3) प्रभूत (पर्वत वृक्ष आदि) इनमें सूक्ष्म शरीर मुक्तकाल तक रहते हैं किन्तु शेष दोनों शरीरों का शीघ्र नाश हो जाता है। सूक्ष्म शरीर सृष्टि के आदि में अव्यक्त प्रकृति से प्रगट होता है और यह महत्तत्व, अहंकार, एकादश इन्द्रियों तथा पंचतन्मात्राओं से बना होता है। यह पत्थर तक में प्रवेश कर सकता है, प्रत्येक शरीर में अलग–अलग रहता है तथा पुराने स्थूल शरीरों को त्यागता और नये स्थूल शरीरों को ग्रहण करता रहता है।

अज्ञान रूप विपर्यय संसार का मुख्य बीज है जिसके पाँच भेद हैं जिन्हें योगशास्त्र में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश नामक पाँच क्लेश कहे जाते हैं। इन समस्त क्लेशों की निवृत्ति आत्मा की स्वरूप स्थिति अथवा निर्बीज समाधि से ही सम्भव है। जिस प्रकार प्रकृति–पुरुष के विवेकज्ञान के अभाव में पुरुष का बन्धन सम्भव होता है, उसी प्रकार विवेक ख्याति द्वारा उसका बन्धन समाप्त होता है। योगाभ्यास द्वारा मनुष्य प्रकृति के सम्पूर्ण तत्वों का साक्षात्कार करता हुआ तथा संयम के बल से उन पर पूर्णाधिकार प्राप्त करता हुआ अन्त में प्रकृति–पुरुष का भेदज्ञान प्राप्त करके जड़–चेतन की गाँठ को सुलझाने में समर्थ हो जाता है। निरन्तर विवेक ख्याति के उदय होने से धर्ममेघ समाधि प्राप्त होती जिसके फलस्वरूप क्लेशों और कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। इस अवनस्था में प्रकृति के तीनों गुण कृतार्थ हो जाते हैं और वे उस पुरुष के लिए निष्प्रयोजन हो जाते हैं, क्योंकि पुरुष का भोग और अपवर्ग दोनों सिद्ध कर देने के पश्चात् उनका कोई कार्य शेष नहीं रह जाता। इस प्रकार पुरुष के अर्थ से शून्य हुए गुणों का पहले जिस क्रम से प्रसव हुआ था उसके उलटे क्रम से प्रतिप्रसव होता है, अर्थात् मन अहंकार में, अहंकार बुद्धि में और बुद्धि प्रधान अथवा प्रकृति में लय हो जाती है और आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। 'पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।'' अर्थात् पुरुष का अन्तिम लक्ष्य अपवर्ग पूर्ण करने के पश्चात् गुणों का अपने कारण में लीन हो जाने का नाम कैवल्य है। इसी प्रकिार चितिशक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना भी कैवल्य है।

गीता में जीवन-दर्शन

श्री ऋषिराम शर्मा (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

भगवती गीता हमें उस अमूल्य अमर जीवन-दर्शन का पाठ पढ़ाती है जिसको ग्रहण कर मानव अपने को सर्वमायिक बन्धनों से मुक्त कर कृतार्थ हो सकता है, उस अमृत को पा सकता है जिसके पान कर लेने पर स्वतः ही मानव-जीवन की लक्ष्यसिद्धि हो जाती है, अर्थात् वह अविद्या का आवरणान्धकार हट जाता है जिसके प्रभाव से मानव इस भोग-जगत् के कंटकाकीर्ण मार्गों में भटक रहा था, विषैली विषरूपी झाड़ियों में फंसा हुआ, काम, क्रोध, ईर्ष्या मोह के असह्य चाबुक खाता हुआ, अपनी विवशता पर तड़पता रहा था। भौतिक, आधिभौतिक तापों से तप्त बेचारा दुःखी मानव अपने ही कर्म संस्कारों की भँवर में पड़कर मुक्ति के लिए आह भर रहा था और जितना मुक्ति के प्रयास में दौड़ा उतना-उतना विषयों की मृगतृष्णा में ठोकरें खाता रहा था। अब तो इस अविधा के आवरण में जगत के दृश्य ही सत्य भासित हो रहे हैं और ईश्वर की बातें केवल कल्पना लगती हैं, मन और बुद्धि भी बन्धन में मुक्ति का एहसास करती हैं जैसे कि मछली जाल में फँस जाने पर जाल को ही मुख में दबाकर धरातल में चली जाती है और एहसास करती है कि मैं तो जाल से मुक्त हूँ। उसे क्या पता कि जाल खींचे जाने पर वह मारी जायेगी। इसी तरह कुछ लोग इस हमारे जगत में संभोग में भी समाधि का एहसास करने लगते हैं और भोग-विलास को ही अपने बुद्धि के विलास से मुक्ति का दाता सिद्धान्त बना लेते हैं। खैर, हमें तो असलियत को जानने के लिए अपने शास्त्रों की शरण में जाना है। माँ गीता कहती हैं कि-

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य विवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कार्यं कर्तुमहर्ति।।

अर्थात् मुक्ति के लिए मुक्तिदाता शास्त्रों को ही प्रमाण मानना चाहिए और उनके द्वारा निर्देशित मार्ग का ही अनुशरण करना चाहिए। बात स्पष्ट है जो तैरना नहीं जानता वह डूबते हुए लोगों को कैसे बचा सकता है। अतः हम अपनी समस्या पर आना चाहते हैं जिसका समाधान हमें चाहिए। हमारी मूल समस्या है कि हम सुखमय और शान्तिमय जीवन चाहते हैं इसका समाधान अब तक विषय-भोगों में खोजते रहे किन्तु समस्या जटिल होती गयी जैसे कि खुजली के रोग में खुजाने पर सुख का आनन्द तो होता है किन्तु रोग तथा तज्जनित पीड़ा बढ़ती ही जाती है इसलिए भगवती गीता बताती है कि-

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापयिनोनित्यान् च तान् तितिक्ष्व भारत।।
ये तु संस्पर्शजाः भोगाः दुःखयोनयः एय ते।
आध्यन्तवन्त कौन्तेय न तेषु रमते बुधाः।।

अर्थात् बहिर्मुखी इन्द्रियों द्वारा जिन विषयात्मक सुख-दुःखों को हम भोगते हैं और त्वचा द्वारा

जिस ऊष्णता एवं शीतलता का हम अनुभव करते हैं वह सब विषयों से वृत्ति का स्पर्शमात्र है। जैसी वृत्ति कर्म भोगानुसार बनती है वह तद्‌गत सुखानुभूति या दु:खानुभूति कराती है और जैसे कर्मभोग की निश्चित अवधि पूर्ण होती है उसी क्षण वृत्ति स्वत: बदल जाती है और पूर्व अनुभूतियाँ स्मृतिमात्र रह जाती है तथा वर्तमान वृत्ति नई अनुभूतियों के साथ उपस्थित हो जाती है। अत: हे अर्जुन! इन आने-जाने वाली नश्वर वृत्तियों की मृगतृष्णा में भ्रमित नहीं हो अपितु साहस के साथ दु:ख-सुख सहने की अपनी सामर्थ्य को बढ़ाओ क्योंकि वृत्ति विषय के सम्पर्क से जनित इन्द्रिय भोग वस्तुत: दु:ख के ही मूल हैं, आगामी दु:खद संस्कारों का निर्माण करते हैं और अस्थिर होने के कारण मानसिक क्लेश एवं अशांति के कारण हैं। ज्ञानी पुरुष कभी भी इस विषय-वासना के जाल में नहीं फंसते।

यह क्षणिक एवं सर्वाधिक विषय सुख भी जीव की इच्छामात्र पर निर्भर नहीं करता, अपितु अपने ही पुण्य कर्मों तथा पापकर्मों पर निर्भर करता है और उसमें भी भाग्य की विडम्बना यह है कि--

पुण्यात् सुखमाप्नुवन्ति पुण्यं नैव कुर्वन्ति मानवा:।
पापात् दु:खमाप्नुवन्ति पापम् कुर्वन्ति यत्नत:।।

अर्थात् सुख पुण्य कर्म का परिपाक भोग है किन्तु मानव की पुण्य करने की रुचि नहीं है केवल मात्र फलभोग चाहता है। इसी प्रकार पापकर्म का परिपाक भोग ही दु:ख है और यह बेचारा मानव पापकर्म करने के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है किन्तु उसके फल को लेने से घबराता है, परन्तु विवश है। जैसा कर्म वैसा फल अवश्य ही भोगना है, क्योंकि ईश्वर का नियम है कि "अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्" अत: इच्छा के विरुद्ध सभी कर्मफलों को भोगना ही इस मानव के भाग्य की विडम्बना है, विवशता में सर पटकना है भगवती गीता का उस मानव के लिए जीवन-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतु: र्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।
योगस्थ: कुरु कर्मणि संग त्यक्त्वा धनञ्जय:।
सिद्धयसिद्धयो: समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद् योगाय युजस्व योग: कर्मसु कौशलम्।।
कर्मज बुद्धियुक्ता: हि फल त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्मबन्धविनिर्मुक्त: पदं गच्छन्ति अनामयम्।।

अर्थात् हे मानव! तेरा केवल कर्म करने में ही अधिकार है और कर्म का फल तो कर्म के परिपाक पर निर्भर करेगा। तेरा उस पर स्वेच्छा का कोई नहीं, तू तो व्यर्थ केवल सुख भोग की प्रतीक्षा में अपना जीवन नष्ट कर रहा है, अरे! सुख तो तभी मिलेगा, जब ईश्वरीय नियम के अनुसार तेरे किसी पुण्य कर्म का परिपाक हो और वह भी क्षणिक ही रहेगा, क्योंकि तेरे पापकर्मों के पर्वत का कोई न कोई पत्थर तेरे सर पर गिरता ही रहेगा कहीं बचकर भागने का स्थान तो तुझे मालूम ही नहीं है। इसलिए सुखभोग रूपी कर्मफल की व्यर्थ कामना मत कर और न कर्मक्षेत्र से भागने की कोशिश कर, क्योंकि ऐसा करना तेरा व्यर्थ मिथ्या व्यवसाय ही होगा। यदि तू वास्तविक सुख और शान्ति पाना चाहता है तो

उसका उपाय केवल एक है और वह है फलासक्ति को त्यागकर आत्मशुद्धि के लिए योगयुक्त होकर कर्म करना चाहिए और कर्म करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि कर्म की फलसिद्धि अथवा विफलता तुम्हारे मन को विचलित न करे, हतोत्साहित न करे और न कर्म से विमुखता आने पावे। मन सफलता अथवा असफलता दोनों ही स्थितियों में सद्भाव यानि स्थिर तथा शान्त बना रहना चाहिए। मन का पूर्णरूपेण समत्व में यानि संकल्प-विकल्प से रहित शान्तावस्था में बना रहना ही योग कहलाता है। यह निरन्तर याद रखना चाहिए कि कोई भी कर्म अक्षय सुख एवं शान्ति प्रदान करने में समर्थ नहीं होता है। पुण्यात्मा देवता भी स्वर्ग के विशाल सुखभोग भोगकर पुण्य क्षीण हो जाने पर इसी मृत्युलोक में जन्म-मरण के आवागमन में फँस जाते हैं। अतः केवल योगारूढ़ होकर ही मानव पाप-पुण्य के कर्मजाल से मुक्ति पा सकता है, माया-मोह की भँवर से मुक्त होकर इस दुःखास्पद भव-सागर को पार कर सकता है और विषय-वासना के बिच्छू-दंश के असह्य कष्टों से मुक्त हो सकता है। जब तक मानव को कर्मफल की वासना बनी रहती है तब तक अनेकानेक योनियों में पाप-पुण्यों के कर्मों के भुगतान का विषम चक्र चलता ही रहता है और एक कर्मफल का भोग अनेकानेक वासनाओं एवं संस्कारों के बीज जीव के कर्माशय में डाल देता है जो कि समयानुकूल अंकुरित होते रहते हैं। केवल वही लोग इस विषम जन्म-मरण के भुगतान-चक्र से मुक्त हो पाते हैं जो निष्काम कर्म करते हुए योगयुक्त हो जाते हैं और समाधिस्थ होकर उस परात्पर परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं जिसके बाद-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् योग-समाधि के प्राप्त होते ही चित्त जड़ की गाँठ यानी जड़ बुद्धि का आत्मा में आरोपण का भेद खुल जाता है यानी जीव को अपने स्वय प्रकाशी सच्चिदानन्द स्वरूप का पता चल जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी अब तक की अविद्या-जनित सीमितता विवशता एवं मिथ्या बुद्धि बोधात्मक अहंकार के कारण होने वाले परिणाम-दुःख, ताप-दुःख संस्कार-दुःख तथा वृत्ति विरोधात्मक दुःखों का जाल विच्छिन्न हो जाता है। उसका क्लेशमूलक कर्माशय योगाग्नि से जलकर राख हो जाता है और मानव अब जीवनमुक्त होकर अक्षय सुख-शांति को पा जाता है।

यह सब कैसे होता है और योगारूढ़ होने के लिए क्या करना पड़ता है, यह एक मूल एवं जटिल विषय है। आइये, इस जटिल विषय को समझने के लिए हमें अर्जुन जैसा जिज्ञासु अधिकारी बनना होगा और सर्व-योगेश्वर कृष्ण की शरण में जाना होगा। इस कुरुक्षेत्र रूपी जगत में एक ओर कौरव रूपी आसुरी वृत्तियों की सेना है तो दूसरी ओर पाण्डवरूपी दैवी वृत्तियों की सेना मैदान में है। तीसरी शक्ति है जगदात्मा कृष्ण जो सभी का स्वात्म स्वरूप है और जिसके प्रकाश में और जिसकी शक्ति से इस युद्धक्षेत्र का, युद्ध क्षेत्र की दोनों पक्ष की सेनाओं का एवं दैवी सेना की विजय का निर्धारण होना है। दैवी पक्ष के प्रमुख सेनापति अर्जुन जिनके गुण-विशेष का विचार करना आवश्यक है। अतः अधिकारिता का स्वरूप, ज्ञान का स्वरूप और योग-साधनों के स्वरूप का विवरण अगले लेख में करेंगे।

जादू सा असर करता है भारतीय विचार

स्वामी विवेकानन्द

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे-आगे मार्ग निष्कंटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्व को शोणित-प्रवाह पर ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्व खून से भरे जख्मी आदमियों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पंखों से उड़कर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और हुआ भी सदा यही है। अतएव संसार के लिए भारत को सदा कुछ देना पड़ा है। लन्दन में किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओं ने क्या किया ? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।" अंग्रेज जाति की दृष्टि में - वीर, साहसी, क्षत्रियप्रकृति अंग्रेज जाति की दृष्टि में- दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टि बिन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की, यहीर हमारा महान गौरव है। तुम लोग आज कल सदा यह निन्दा सुन रहे हो कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं ; और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे - ऐसे व्यक्तियों के मुँह की होती है, जिनसे हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्थन की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म ने कभी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की, उसने कभी खून की नदियाँ नहीं बहायीं, उसने सदा आशीर्वाद और शान्ति के शब्द कहे, सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कथा सुनोयी। यहीं, केवल यहीं, दूसरे धर्म के द्वेष न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं पर धर्म- सहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्य रूप में परिणित हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त- चर्चा मात्र है। यहीं, केवल यहीं, यह देखने में आता है कि हिन्दू लोग मुसलमानों के लिए मसजिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव आप समझ गये होंगे कि किस तरह हमारे भाव धीरे-धीरे शान्त और अज्ञात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा लक्षण है, उसका शान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभूत शक्ति उसके पीछे है, उसका प्रकाश जबरदस्ती से नहीं होता। भारतीय विचार सदा जादू सा असर करता है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 019/21-23 DECEMBER 2023

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यस्य विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृत्तिः।।

(चाणक्य नीति)

पुत्र वही है जो पिता का भक्त है, पिता वह है जो पुत्रों का पालन-पोषण करता है, मित्र वह है जो विश्वास पात्र हो और पत्नी वह है जिससे सुख प्राप्त हो।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा